चन्दामामा
मई १९८७

“बनता है ये खेल खेल में हँसी खुशी में, रेल पेल में
सोच समझ कर झट चिपकाओ
मौज-मौज में इसे बनाओ”

फ़ेवी फ़ेयरी
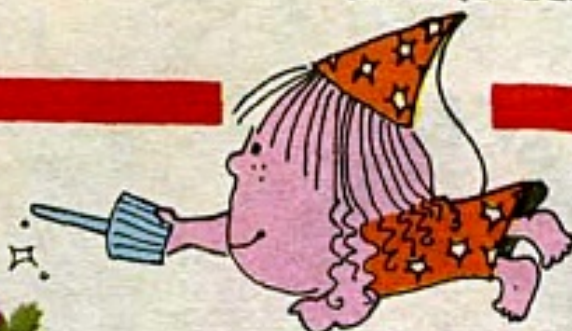
“जादू का करिश्मा नहीं
हाथ का कमाल है
पैसे का सवाल नहीं
काम बेमिसाल है।”
“जल्दी आकर हमें बताओ
करना क्या है—यह समझाओ।”
“जल्दी आओ
सब कुछ सुन लो....
सोचो समझो झट चिपकाओ
फ़ेविकोल एम आर को लाओ
मोर बनाओ,
गुड़िया, टोकरी, पर्स बनाओ
न चिप-चिप है, न है गंदगी
मज़े-मज़े में करते जाओ
करते जाओ॥”

इस ऐस्टर्स फूल को बनाने की क्रमवार रीति मुफ़्त प्राप्त करने के लिए यह कूपन भेजिए, इस पते पर लिखिए: 'फ़ेवी फ़ेयरी' पोस्ट बॉक्स ११०८४, बम्बई ४०० ०२०

इस ऐस्टर्स फूल को बनाने की क्रमवार रीति मुफ़्त प्राप्त करने के लिए, यह कूपन 'फ़ेवी फ़ेयरी' पोस्ट बॉक्स ११०८४ बम्बई ४०० ०२० के पते पर पोस्ट कर दो

नाम ______
उम्र ______
पता ______
नगर ______
राज्य ______ पिन ______

क्या आपको हमारा [illegible] मिल गया हां/नहीं

फ़ेविकोल एम आर
सिन्थेटिक एडहेसिव

उत्तम काम, उत्तम नाम फ़ेविकोल का यह परिणाम

® ये [logo] और फ़ेविकोल मार्क दोनों पिडिलाइट इण्डस्ट्रीज प्राइवेट लिमिटेड, बम्बई ४०० ०२१ के रजिस्टर्ड ट्रेडमार्क हैं.

OBM 9403HN

मिलिये सुपरफ़ाइटर्स से!
FOAMING
Forhan's
FLUORIDE
मैदान पर सुनील गावसकर की रग-रग में
फड़कता है मुकाबले का जोश.
तभी तो दुनिया उन्हें 'सुपरबैट्समैन' कह कर
पुकारती है. पर सुनील गावसकर कहते हैं –
"मैं तो सुपरफ़ाइटर हूँ और मैं अपने बेटे को भी
बनाऊँगा सुपरफ़ाइटर. तभी तो मैं उसे
बचपन से ही सही दाँव-पेंच सिखा रहा हूँ.
जैसे दाँतों की देखभाल के लिये फोरहॅन्स
फ़्लोराइड—सड़न के खिलाफ़ सुपरफ़ाइटर."
कीटाणु भोजन के कणों पर
असर करते हैं
और ऐसे एसिड पैदा करते हैं, जिनसे सड़न
शुरू होती है. फोरहॅन्स के सुपरफ़ाइटर में
असरकारक फ़्लोराइड है जो दाँतों का इनैमल
मज़बूत करके एसिड के हमले को रोकता है.
और फोरहॅन्स का अनोखा एस्ट्रिंजेंट
मसूड़ों को कस कर दाँतों को मज़बूत आधार
देता है, बरसों बरकरार रहने के लिये.
सुनील साहब और कुछ?
"मैं अपने बेटे को देता हूँ
फोरहॅन्स सुरक्षा. आप?"
फोरहॅन्स
२२ बरकरार

GM-113/86 Hn.

बच्चों की कहानियों की सुन्दर पुस्तकें
* मनभावन, कल्पनाशील, शिक्षाप्रद, आकर्षक, रंगीन सचित्र पुस्तकें, अब नई साज-सज्जा के साथ, हर उम्र के बच्चों का भरपूर मनोरंजन करती हैं।
ड्रीमलैण्ड पब्लिकेशन्स
काठ का घोड़ा
दयालु हँसपरी
जादू की डिबिया
जादुई छाता
जल्द प्रकाशित हो रहा है
विक्रम और बेताल
25 कहानियाँ जो बेताल राजा विक्रमादित्य को सुनाता है शिक्षात्मक और दिलचस्प 5 भागों में प्रकाशित
* मूल्य 5/- रुपये प्रत्येक
40 तरह की पुस्तकें हिन्दी/अंग्रेजी में उपलब्ध
आगामी प्रकाशन: प्रसिद्ध व्यंग्यकार
सुधीर तैलंग का कॉमिक्स
जिम जादूगर के कमाल
40 पुस्तकों का सेट 200/- रुपये (डाक खर्च मुफ्त)
VPP द्वारा मंगाने के लिये 40/- अग्रिम भेजें।
अपने निकटतम पुस्तक विक्रेता से खरीदें या लिखें:
ड्रीमलैंड पब्लिकेशन्स
4425, नई सड़क, दिल्ली 110 006 फोन: 2915831, 2929770.

लिओ के लाड़ले हीरो
मौज मनाएं सबसे बढ़कर...
देख लो लिओ लेकर!
LEO
ऑटो रायफ़ल
५ से १२ वर्ष तक
बड़ी बंदूक, बड़ा निशाना...
बहादुरी से लड़ते जाना!
कैरी-ऑन शेफ़
५ वर्ष से अधिक
शेफ़ को सही राह दिखाओ
केक के ऊपर केक जमा करो, और विजयी बनो!
ले-एन-एग
७ वर्ष से अधिक
बैटरी से चले, बटन दबाओ, जल्दी-जल्दी
ज़्यादा अंडे पकड़ो!
बीच क्राफ़्ट
२ से ५ वर्ष तक
ज़मीन पर रगड़ो, छोड़ो,
ये चले तो इंजन भी हिले-डुले!
पायलट आप बनो!
डेयर डेविल
२ से ५ वर्ष तक
ज़मीन पर रगड़ो, छोड़ो
और फ़ायर इंजन दौड़ाओ, बहादुरी से
आग बुझाओ!
DAREDEVIL
रेसिंग रोवर
३ वर्ष से अधिक
दो हिस्सों को अलग-अलग खींचो,
जीप में शक्ति भरो, और छोड़ो,
चलो अब दूर-दूर की सैर करो!
फ़ॉल्कन
३ वर्ष से अधिक
पीछे खींचकर छोड़ो, तेज़ी से आगे बढ़े,
नयी-नयी दुनिया में आप उड़ें!
लैण्ड क्रूज़र
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाली जीप
टकराए, मुड़े, आप मज़े से चलें...
मोबाइल कार
३ वर्ष से अधिक

आओ
अंकल लिओ क्लब के सदस्य बनो!
UNCLE LEO CLUB
Come join the fun!
कोई भी लिओ खिलौना खरीदकर, आप भी अंकल लिओ क्लब के सदस्य बन सकते हैं. जल्दी कीजिए, क्योंकि पहले २५,००० बच्चों के लिए एक साल की सदस्यता बिल्कुल मुफ़्त है!
FLYING DISC
JUNIOR
फ़्लाइंग डिस्क
६ वर्ष से अधिक
फ़्लाइंग डिस्क उड़ाओ, चांद सितारों से आगे बढ़ाओ!
शूट-आउट-गन
५ वर्ष से अधिक
निशाना लगते ही मज़बूती से चिपके, आपको साफ़-साफ़ दिखे!
मॉज़र पिस्टल
८ वर्ष से अधिक
मशहूर मॉज़र पिस्टल का हूबहू नन्हा रूप!
पिस्टल
४ से १० वर्ष तक
गोली चलने की दनादन आवाज़, ऊपर उठाओ, निशाना लगाओ... दुश्मन को मार गिराओ!
मेल वैन
३ से ९ वर्ष तक
दोस्तों को लिखो चिट्ठी-खत, मेल वैन में पहुंचाओ फटाफट!
MAIL VAN
बुल्स आय
७ वर्ष से अधिक
निशाना लगाओ, गोली चलाओ, निशानेबाजी के कमाल दिखाओ!
फ़ाइटर जैट
३ वर्ष से अधिक
पीछे खींचकर छोड़ो, तेज़ी से बढ़े, हर लड़ाई शान से लड़े!
मार्टिनी पोर्श
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाली स्पोर्ट्स कार, छूते ही ये घूमे-मुड़े, देखो कैसी सरपट दौड़े!
फ़्लाइंग सॉसर गन
५ वर्ष से अधिक
नन्ही उड़न तश्तरियां उड़ाए, अंतरिक्ष में ले जाए, तुम्हें स्टार वार्स हीरो बनाए!
स्लाइड राइड
४ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाला रोलर कोस्टर, तेज़ रफ़्तार... गोल-गोल, ऊपर-नीचे भागती कार!
छुक-छुक ट्रेन
३ वर्ष से अधिक
बैटरी से चलने वाला ट्रेन सेट.
LEO
UNTAS LEO P1 2032 HI

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

'ज्ञानोदय' शीर्षक कहानी में हमें एक राजा के अन्दर ज्ञानोदय के फलस्वरूप होनेवाले परिवर्तन का विवरण मिलता है। इस संसार में दुष्ट शासक हर काल में रहे हैं। पर उनके प्रति विद्रोह करके उन्हें पदच्युत करना संभव नहीं रहा। लेकिन कभी कुछ ऐसी घटनाएँ घटती हैं कि दुष्ट शासकों में परिवर्तन आता है और वे न्यायप्रिय शासक बन जाते हैं।

अमर वाणी

ब्रह्मघ्ने च सुरपे च चौरे, भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिः, कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ।।

[विद्वान लोगों ने ब्रह्महत्या करनेवाले, सुरापायी, चोर तथा व्रत भंग करनेवालों के लिए अपराध-मुक्ति का विधान किया है, पर उनके अनुसार उपकार भूलनेवाले कृतघ्न मनुष्य की मुक्ति कभी भी संभव नहीं है।]

वर्ष : ३९ **मई १९८७** **अंक : ९**

एक प्रति : २-५० :: **वार्षिक चन्दा : ३०-००**

CHITRA

Mighty as the sword!
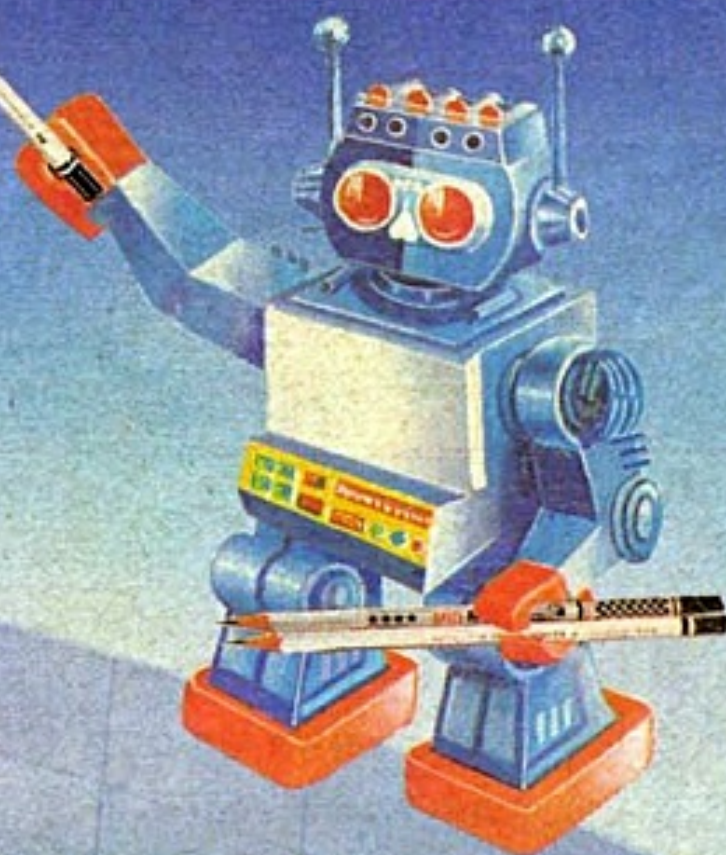
Make your mark...with
APOLLO PENCILS

The space age pencils with
super bonded lead, that doesn't break
Available with attractive printed designs

APOLLO PENCILS PVT LTD.,
107, Regal Industrial Estate,
Acharya Donde Marg, Sewree (West),
Bombay 400 015. Ph: 4133295/4133215

Distributors : GREATER BOMBAY **D. Jagjivandas & Company**, 177, Abdul Rehman Street, Bombay 400 003 Ph : 326524 MAHARASHTRA **A. Aalok & Company**, 107, Regal Industrial Estate, Acharya Donde Marg, Sewree (West), Bombay 400 015. Ph : 4133295/4133215 GUJARAT **N. Chimanlal & Co** 'Jesmin' Building, Near Firdaus Flats, Khanpur, Ahmedabad 380 001, Ph : 395198/399570 DELHI HARYANA PUNJAB, J.K & HIMACHAL PRADESH **Bharati Traders**, 89, Chawri Bazar, Delhi 110 006 Ph : 262854 KARNATAKA ANDHRA PRADESH & GOA **Sanghvi Corporation**, Suresh Bldg., No. 17, 4th Cross, Kalasipalayam, New Extension, Bangalore 560 002. Ph : 225702 CALCUTTA & WEST BENGAL **Sanghvi Corporation**, 14/1/1A, Jackson Lane, 2nd Floor, Calcutta 700 001. Ph : 262141 UTTAR PRADESH **Sanghvi Corporation**, 7-A, Balmiki Marg, Kaisar Bagh, Lucknow (U.P.) Ph : 35095 TAMIL NADU **Sanghvi Corporation**, Batna Complex, 1st Floor, 35, Strotten Muthia Mudaliar Street, Madras 600 079. Ph : 22304 REST OF INDIA **Sanghvi Corporation**, 107, Regal Industrial Estate, Acharya Donde Marg, Sewree (West), Bombay 400 015. Ph : 4133295/4133215

3 Brothers/APL/89

'चन्दामामा' के संवाद

गूंगापन दूर करनेवाला सपना

द्वितीय विश्व महायुद्ध में एक रूसी सैनिक ने अपनी श्रवण एंव वाचा शक्ति खो दी थी। उसने हाल ही में एक सपना देखा कि युद्ध के मैदान में नाजी सैनिक उस पर हमला कर रहे हैं। इस सैनिक ने उनका सामना करने के लिए ज़ोर से चिल्लाकर अपनी विजय के नारे लगाये। यह सपना देखकर वह जाग उठा। सपने में लगाये नारों से उसका गूंगापन जाता रहा। आश्चर्य की बात यह भी है कि उसका बहरापन भी ख़त्म होगया।

मार्क ट्वेन का ताज़ा उपन्यास

हकिल बेरीफिन, टाम सायर आदि कृतियों के विख्यात लेखक मार्क ट्वेन का देहान्त १८२० में हुआ था। उन्होंने अंतिम काल में जो उपन्यास लिखा था, उसका प्रकाशन अब तक नहीं हो पाया था। मिस्सोरी विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक ने इस उपन्यास का पता लगाया। यह एक दुखान्त उपन्यास है।

स्वस्थ बनाने वाले आँसू

सोवियत रूस की एक अनुसंधान-संस्था का कहना है कि आँसू बहने से न केवल दिल हलका हो जाता है, बल्कि रोग के निराकरण में भी यह सहायक सिद्ध होता है।

वानरों का पता बतानेवाला नर

अपनी जगह से हिले बिना वानरों का पता बतानेवाला एक व्यक्ति सेन फ्रान्सिस्को में निवास करता है। चिड़ियाघर से जानवरों के भागने पर वहाँ के अधिकारी उक्त बुजुर्ग से परामर्श करते हैं। वह उन वानरों का सही पता बता देता है। लेकिन वास्तविक समस्या यह है कि उन वानरों को पकड़ा कैसे जाये? चिड़ियाघर के अधिकारी इस समस्या को सुलझाने में लगे हैं।

पुराण कथाः

जाबालि

जाबालि नाम के एक मुनि पूर्वी सागर-तट के एक बन में तपस्या किया करते थे। खूंख्वार जानवरों, गर्मी एवं वर्षा से भयभीत हुए बिना वे अत्यन्त नियम एवं निष्ठा से सदा तपोलीन रहते थे।

एक बार उन्होंने खड़े होकर तप करना प्रारंभ किया। थोड़ीदेर बाद दो गौरैया पक्षी आकर उनके सिर पर बैठ गये। मुनि यह सोचकर निश्चल खड़े रहे कि पक्षियों को किसी तरह की तक़लीफ़ न हो। कुछ देर बाद वे दोनों नर मादा पक्षी घास-फूस इकट्ठा करके जाबालि मुनि के सिर पर घोंसला बनाने लगे। फिर भी जाबालि अत्यन्त संयम के साथ निष्कम्प खड़े रहे। दिन बीतते गये। गौरैया ने अंडे दिये, फिर उन्हें सेया। अंडों से चूज़े निकले और जब उनके पूरे पंख निकल आये तो वे उड़ गये। जबालि मुनि इसके बाद भी एक माह तक यह सोचकर स्थिर खड़े रहे कि कहीं वे पक्षी लौट न आयें। पर पक्षी नहीं लौटे। तब मुनि आश्वस्त होकर समुद्र में स्नान करने चले गये।

जाबालि जब समुद्र में स्नान कर रहे थे, तो उन्हें पक्षियों के प्रति अपनी सहनशीलता और करुणा का स्मरण हो आया। वे हंस पड़े। दूसरे ही क्षण सागर के जल से एक राक्षस ऊपर उठा और बोला, "जाबलि, तुम्हारी हंसी का कारण मैं जानता हूँ। यदि कोई उत्तम कार्य करने के बाद उसका विचार करके गर्व करता है तो उससे प्राप्त होनेवाला फल नष्ट हो जाता है। उत्तम कार्य करने के बाद विनयी होना चाहिए, गर्व नहीं करना चाहिए। इस सम्बन्ध में यदि तुम विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना चाहते हो तो काशी जाकर तुलाधर के दर्शन करो!" यह कहकर राक्षस अदृश्य होगया।

राक्षस के आदेशानुसार जाबालि काशी पहुँचे। तुलाधर के दर्शन करके उनके मुख से अनेक धर्म-तत्वों का ज्ञान प्राप्त किया। जाबालि इसके पश्चात विनय का साक्षात् रूप होगये।

काँसे का लोटा

पटनीपुर गाँव के ज़मींदार का नाम था रघुवीर सहाय । एक बार उसके गाँव के ग़रीब किसान शिवराम ने उसके पास बंजर पड़ी दस एकड़ ज़मीन ठेके पर लेली । शिवराम ने सोचा था कि वह अपने सती-बच्चों की सहायता से ज़मीन को भी उपजाऊ बना लेगा, पर उसका यह विचार फलीभूत न हुआ । बहुत श्रम करने के बाद भी उस खेत की पैदावर इतनी ही हो सकी कि वह बड़ी मुश्किल से अपने सती-बच्चों का पेट पाल सके । शिवराम, उसकी पत्नी सरला और दो बच्चों ने गर्मी, बरसात का ख्याल किये बिना कठिन परिश्रम किया, पर परिणाम में अधिक कुछ न मिल सका ।

इन्हीं दिनों पटनीपुर के निकट बहती कोसा नदी में बाढ़ आगयी । शिवराम के खेत की फ़सल तो नष्ट हुई, उसका एक बैल भी बाढ़ में बह गया । इतने नुकसान के बाद भी शिवराम को रघुवीर सहाय को ठेके का धन देना था । वह अपने दूसरे बैल को लेकर हाट में बेचने के लिए निकल पड़ा ।

रास्ते में शिवराम को एक बौना मिला । वह विचित्र-सी पोशाक पहने हुए था और लंगड़ा रहा था ।

एक आदमी को बैल के साथ जाते देखकर उसने कहा, "भाई, मेरे पैर में चोट आगयी है। चल नहीं पारहा हूँ। क्या तुम मुझे थोड़ी दूर तक अपने बैल पर बिठा लोगे ?"

शिवराम को उस बौने पर बड़ी दया आयी । वह विनम्र स्वर में बोला, "यह बात सच है कि तुम पैदल चलने की स्थिति में नहीं हो । लेकिन यह भी तो सच है कि बैल गधे और घोड़े की तरह सवारी का जानवर नहीं है ।"

यह उत्तर सुनकर बौने का चेहरा उतर गया । वह दीन स्वर में बोला, "भाई, अगर मैं यहीं रह

विमला दीक्षित

गया तो रात होने पर इस जंगल में कोई खूंख्वार जानवर मुझे खा न जायेगा ?"

बौने की बात सुनकर शिवराम का दिल बुरी तरह पसीज उठा । उसने कहा, "भाई, आपद्-धर्म मानकर मैं तुम्हारी मदद कर देता हूँ। आओ, बैठ जाओ!" शिवराम ने उसे उठाकर बैल पर बिठा दिया ।

दोनों बातचीत करते हुए चलते रहे । बौने ने किसान का सारा वृत्तान्त जान लिया । कुछ दूर यात्रा करने के बाद बौने ने कहा, "भाई शिवराम, तुम हाट में इतनी दूर जाने का श्रम क्यों उठाते हो? इस बैल को मैं ख़रीद लूँगा ।"

शिवराम ने बौने की बात स्वीकार कर ली । तब बौने ने अपनी पोशाक में से एक लोटा निकाला । वह आकार में छोटा और पेंचदार था तथा काँसे का बना हुआ था । काँसे के उस लोटे पर बौने की रूप-रेखाओं वाले कई लोगों के चित्र बने हुए थे ।

बौने ने काँसे का वह लोटा शिवराम को देकर कहा, "देखो शिवराम, मैंने तुम्हारे बैल का दाम चुका दिया है । अब तुम अपने घर वापस चले जाओ ।"

शिवराम बौने की बात सुनकर चकित रह गया । उसने शंकित स्वर में पूछा, "क्या यह काँसे का लोटा मेरे बैल के मूल्य के बराबर होगा? तुम्हारी बात मुझे बड़ी विचित्र लग रही है । फिर भी, बताओ, मुझे ज़मींदार को जो ठेके के रुपये देने हैं, वे कहाँ से आयेंगे ?"

बौना ठहाका मारकर हँस पड़ा, बोला, "मेरी बात पर विश्वास करो! यह काँसे का लोटा तुम्हारी

सारी मुसीबतों को दूर कर देगा और तुम परम सुखी हो जाओगे।'' यह कहकर बौन ने लोटे का ढक्कन हटा दिया।

दूसरे ही क्षण लोटे के भीतर से अत्यन्त मधुर संगीत सुनाई देने लगा। इसके बाद बौने ने लोटे को पहले की तरह बन्द कर दिया, फिर कहा, ''जानते हो, यक्षों को छोड़कर इतना मधुर संगीत और कोई नहीं सुना सकता!''

''तो तुम इस संगीत से मेरी और मेरे सती-बच्चों की भूख मिटाना चाहते हो, यही तुम्हारा मतलब है न?'' शिवराम ने पूछा।

यह प्रश्न सुनकर बौने ने अपना सिर पकड़ लिया, फिर बोला, ''अरे, मैं भी कैसा भुलकड़ हूँ? तुम्हें असली बात बताना तो भूल ही गया। तुम घर पहुँचकर खूब अच्छी तरह स्नान करना। घर के आँगन का थोड़ा-सा स्थान स्वच्छ करके वहाँ इस लोटे को रख देना। इसके बाद इसका ढक्कन खोलकर कहना, 'काँसे के लोटे, तुम जो सहायता कर सकते हो, करो!' समझे!'' इसप्रकार कहकर उस बौने ने बैल को हाँक दिया और पास के पेड़ों की ओट में चला गया।

शिवराम ने घर पहुँचकर सारा वृत्तान्त अपनी पत्नी को सुना दिया। उसकी पत्नी चिंतित होकर बोली, ''तुम्हें किसी ने खूब उल्लू बनाया है! यह हमारी बदक़िस्मती ही है। और इसे क्या कह सकते हैं?''

''लेकिन, सरला, चेहरे से वह धोखेबाज नहीं लग रहा था। पहले मुझे इस लोटे को आजमा लेने दो!'' यह कहकर शिवराम ने स्नान किया और काँसे के लोटे को स्वच्छ स्थान पर

रखकर उसका ढक्कन खोलकर कहा, "काँसे के लोटे! तुम मेरी जो सहायता कर सकते हो, करो!"

दूसरे ही क्षण उस बौने की तरह के दो दूसरे बौने काँसे के लोटे से 'ठंग' की ध्वनि के साथ बाहर कूद पड़े और वहाँ पर पड़े पलंग, तिपाई आदि पर सोने के सिक्के और चांदी के बर्तनों को उंड़ेल दिया।

इस दृश्य को देखकर शिवराम, सरला और बच्चों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे अभी भौंचक्के-से खड़े ही थे कि बौने चांदी के थालों में बढ़िया भोजन परोसकर अदृश्य होगये।

शिवराम के परिवार ने कभी इतना स्वादिष्ट खाना नहीं खाया था। बौनों से प्राप्त सोने के सिक्कों से शिवराम ने एक अच्छा मकान ख़रीद लिया और उसमें आवश्यक सारी सुविधाएँ कर लीं।

अभी एक महीना भी न बीता था कि ज़मींदार रघुवीर सहाय को शिवराम की बदली हुई स्थिति का सारा ब्यौरा मिला। एक काँसे के लोटे ने गरीब शिवराम की क़िस्मत खोल दी है, यह समाचार भी उसे मिला। ज़मींदार ने उस महिमाशाली लोटे को हड़पने की योजना बनायी।

एक दिन शिवराम अपने घर पर नहीं था, तभी ज़मींदार अपने कारिन्दों के साथ वहाँ आ धमका। वह शिवराम का सारा धन और काँसे का लोटा लेकर चलता बना। शिवराम बेबस चुप रह गया।

शिवराम के घर में फिर से दारिद्र्य की यातनाएँ शुरू हो गयीं। तब एक दिन सरला ने उससे कहा, "क्यों न तुम एक बार फिर उस बौने से मिलो, जिसने तुम्हें वह लोटा दिया था।"

शिवराम ने अपनी पत्नी की सलाह मान ली और वह उस दिशा में चल पड़ा, जहाँ उसे वह बौना मिला था। वहाँ बौना एक पेड़ की डाल पर बैठा हुआ था। उसने किसान शिवराम को देखा तो वह डाल पर से नीचे कूद पड़ा और उसके पास आकर बोला, "क्यों भाई, उदास मालूम होते हो? मैंने जो काँसे का लोटा दिया था, वह काम नहीं दे रहा है क्या?"

शिवराम ने बौने को सारा वृत्तान्त सुना दिया। सारी कथा सुनकर बौना पेड़ पर गया और वहाँ के

एक खोखल के अन्दर से उसने चांदी का एक लोटा निकाला और किसान शिवराम के हाथ में सौंप दिया। शिवराम अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपने घर ले गया।

इधर ज़मींदार भी सावधान था। उसने अपने कारिन्दों को यह आदेश दे रखा था कि वे किसान शिवराम पर निगरानी रखें। कारिन्दों के द्वारा ज़मींदार को चांदी के लोटे का समाचार भी मिल गया।

ज़मींदार ने किसी उपाय से चांदी के लोटे को भी चुराना चाहा। उसी शाम ज़मींदार रघुवीर सहाय ने एक भोज का प्रबन्ध किया और किसान शिवराम को मुख्य अतिथि के रूप में निमंत्रित किया।

शिवराम के पहुँचते ही ज़मींदार ने अन्य उपस्थित मेहमानों से कहा, "हमारे मुख्य अतिथि शिवराम महाशय के पास चांदी का एक क़रामाती लोटा है। ये हमारे सामने उसका प्रदर्शन करेंगे।"

किसान शिवराम ने अपने कपड़ों में से चांदी का लोटा बाहर निकाला और उसे नीचे रखकर कहा, "चांदी के लोटे! चांदी के लोटे! तुम मेरी जो कुछ मदद कर सकते हो, करो!"

दूसरे ही क्षण दो काली आकृति के महाकाय आदमी चांदी के लोटे के अन्दर से हुंकार ध्वनि कर बाहर कूद पड़े और अपने हाथ की लाठियों से ज़मींदार को पीटने लगे।

ज़मींदार चिल्लाने लगा, फिर शिवराम की खुशामद कर बोला, "भाई शिवराम, तुम्हारा पुण्य होगा। इन दोनों पहलवानों को तुम लोटे के अन्दर जाने का आदेश दे दो!"

शिवराम ज़रा भी विचालित नहीं हुआ। उसने कठोर स्वर में कहा, "ज़मींदार, तुम पहले मेरा काँसे का लोटा वापस करो!"

ज़मींदार रघुवीर सहाय तुरन्त अपने घर के अन्दर दौड़ा और काँसे का लोटा लाकर शिवराम के हाथ में थमा दिया।

कुछ ही दिनों में शिवराम उस इलाके का सबसे बड़ा धनवान बन गया। पर्याप्त धन होजाने के बाद उसने धन देनेवाले काँसे के लोटे को सबकी आँख बचाकर एक गुप्त स्थान पर धरती में गाड़ दिया।

योग्य उपहार

मुनिग्राम में रामभद्र नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसके शांता नाम की एक कन्या थी। शान्ता रूपवती भी थी और बुध्दिमती भी। रामभद्र ने अपनी बेटी को यह स्वतंत्रता दे रखी थी कि वह अपनी पसन्द के युवक के साथ विवाह कर सकती है।

मुनिग्राम के ही दो युवक सागर और नारायण शांता के साथ विवाह करने के इच्छुक थे। सागर धनाढ्य परिवार का था और नारायण साधारण स्थिति के परिवार का। पर नारायण विशेष रूप से बुध्दिमान था। सागर और नारायण दोनों ने ही शांता से विवाह करने की इच्छा प्रकट की।

शांता ने सागर और नारायण दोनों के सामने अपनी शर्त रखकर कहा, "आप दोनों अपनी समझ से एक - एक उत्तम उपहार मुझे दें। मैं योग्य उपहार को अपने पास रखूँगी और जो उपहार मुझे पसन्द न होगा उसे वापस कर दूँगी। आप दोनों में से जिसका उपहार मेरे पास रह जायेगा, आप समझ लेना, मैं उसी के साथ विवाह करना चाहती हूँ।"

सागर ने घर पहुँचकर तुरन्त एक हीरों का हार बनवाया और इस बहुमूल्य उपहार को शांता को दे दिया। पर नारायण ने अत्यन्त लगन से एक पुस्तक की रचना की। उसने इस पुस्तक में यह स्पष्ट किया कि धन के साथ प्रेम को नहीं जोड़ना चाहिए। धन मनुष्य को सच्चे सुख से दूर कर देता है। नारायण ने अपनी बात के समर्थन में अनेक पौराणिक कथाओं को भी उद्धृत किया।

इसके बाद नारायण ने वह पुस्तक शांता को देते हुए कहा, "एक निर्धन व्यक्ति की ओर से तुम्हें प्रेमपूर्वक समर्पित यह छोटा-सा उपहार है।"

शांता ने सागर और नारायण के उपहारों को अपने पास रख लिया। इस बीच सागर के पिता

सुदर्शन खन्ना

मनोहरलाल को यह पता लगा कि उसके बेटे ने शांता को बहुमूल्य हीरों का एक हार बनवाकर दिया है। वह क्रुध्द होउठा और शांता के पास आकर धमकी भरे स्वर में बोला, "तुम मेरे बेटे को बेवकूफ़ बनाकर हीरों का एक हार हड़प चुकी हो। तुम भले ही इस शादी के लिए तैयार होजाओ, पर मैं हर्गिज़ इस विवाह की स्वीकृति नहीं दे सकता। इसलिए वह हीरक हार मुझे वापस कर दो!"

शांता इस बात का उत्तर देना चाहती थी, पर इस बीच सागर वहाँ पहुँच गया और अपने पिता से बोला, "पिताजी, जैसे ही मुझे मालूम हुआ कि आप यहाँ आये हैं, मैं भागकर आया हूँ। अगर आपने शांता से हीरक हार वापस माँगा तो समझ लीजिए, आप अपने पुत्र से हाथ धो बैठे हैं।"

मनोहर ने अपने पुत्र को अनेक तरह से समझाने की कोशिश की, पर जब सागर नहीं माना तो हार कर क्षुब्ध स्वर में बोला, "चलो, तुम अपनी करनी का फल भोगो! मुझे तुम्हारे साथ विरोध में नहीं पड़ना है।" यह कहकर वह वहाँ से चला गया।

"शांता, अप्रिय ढंग से ही सही, मेरे पिताजी ने हमारे विवाह की स्वीकृति दे दी है।" सागर ने कहा।

"मैं अपना निर्णय शाम को ही दे सकती हूँ। आप नारायण से भी कह दें और दोनों शाम को आजायें!" शांता ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया।

उसी दिन शाम को सागर और नारायण शांता के घर पहुँचे।

शांता ने हीरों का हार सागर को लौटाते हुए

कहा, "आपने अपने प्रेम को प्रमाणित किया, पर अगर मैं आपके साथ विवाह करूँगी तो मेरे प्रेम का कोई मूल्य न होगा । सब लोग यही सोचेंगे कि मैंने धन के प्रलोभन में आकर आपके साथ विवाह किया है । इस बात को मैंने नारायण द्वारा रचित पुस्तक पढ़कर और भी अच्छी तरह समझ लिया है ।"

इसके बाद शांता ने नारायण की लिखी पुस्तक उसे लौटाकर कहा, "आपकी पुस्तक श्रेष्ठ है । फिर भी मेरे मन में इस बात की शंका है कि आपने यह पुस्तक मेरे मन में सागर के प्रति तिरस्कार पैदा करने के विचार से लिखी है !"

शांता की बात सुनकर नारायण तड़पकर बोला, "शांता, तुम मुझे गलत मत समझो ! मैंने उस पुस्तक को केवल इस भावना से प्रेरित होकर रचा है कि यह तुम्हारे योग्य उपहार बन सके और इसकी मर्मस्पर्शिता तुम्हारे साथ हमेशा के लिए रह जाये और उसे तुम कभी न लौटा सको । सागर मेरा मित्र है । उसके प्रति मेरे अन्दर ज़रा भी ईर्ष्या अथवा द्वेष नहीं है । पर धन में एक बुराई है और वह मनुष्य को जाने अनजाने अवश्य ही बुरा बना देता है । अब यदि तुम मेरा यह उपहार मुझे लौटा देती हो, तब भी तुम इसकी बातें मुझे नहीं लौटा सकोगी । वे अब तुम्हारे हृदय में घर बना चुकी है ।"

नारायण की बुद्धि और उसके तर्क के सामने शांता को झुकना पड़ा ।

सागर ने नारायण से कहा, "दोस्त, शांता ने पहले ही कह दिया था कि वह जिसके उपहार को योग्य समझ अपने पास रखेगी, उसी के साथ विवाह करेगी । मेरे पास केवल धन था और मैं एक बहुमूल्य हीरों के हार से शांता को आकर्षित, प्रलोभित करना चाहता था । मैं उस समय यह नहीं समझ पाया था कि स्वाभिमानी लोग ऐसे उपहार को ठुकरा भी सकते हैं । यहीं मुझे समझने में भूल होगयी, जबकि तुमने शांता को ऐसा उपहार दिया, जिसे वह कभी तुम्हें नहीं लौटा सकेगी । तम्हारी जीत हुई ।" इसके बात शांता और नारायण का विवाह संपन्न हुआ और उन्होंने सुखपूर्वक जीवन व्यतीत किया ।

[१२]

[नागवर्मा की लगभग सारी सेना कपिलपुर के दुर्ग में काम आयी । नागवर्मा और ज्वालाद्वीप के बाघचर्मधारियों का नेता करवीर छद्मवेश में जंगल में भाग गये । इसके बाद राजकुमारी कांतिमती एवं चित्रसेन का विवाह संपन्न हुआ । विवाह के समय उग्राक्ष की कामना-पूर्ति के संदर्भ में चित्रसेन ने उसे अपनी पहली संतान को पाँच वर्ष की होने पर सौंपने का वचन दिया । आगे पढ़िये ...]

उग्राक्ष ने अपने अनुचरों को पुकारा । दूसरे ही क्षण क़िले में इधर-उधर फैले राक्षस दौड़कर उसके पास आ पहुँचे । इसके बाद उग्राक्ष ने चित्रसेन को अपने अनुचरों की ओर से यह आश्वासन दिया, ''महाराज, आप जब भी हमारी सहायता चाहेंगे, तत्काल हम आपकी सेवा में हाज़िर हो जायेंगे । आपको तो मात्र इतना करना होगा कि आप मेरे क़िले में संदेश मात्र भिजवा दें !''

चित्रसेन ने हँस कर कहा, ''उग्राक्ष, चाहता तो मैं यह हूँ कि मुझे तुम्हारी और तुम्हारे अनुचरों की सहायता की आवश्यकता न पड़े और मैं अपनी ही सामर्थ्य से शांतिपूर्वक शासन कर सकूँ । पर अभी मेरा सारा ध्यान नागवर्मा और करवीर पर लगा हुआ है । क्या ही अच्छा हो, अगर तुम्हारे अनुचर जंगल में गायब हुए राजद्रोही नागवर्मा और करवीर को बन्दी बनाकर मुझे सौंप सकें । अगर मुझे या तुम्हें भी कोई ख़तरा है तो इन्हीं दो

दुष्टों से।"

"महाराज, वे दोनों इस तरह गायब होगये हैं, मानो उनका कहीं कोई अस्तित्व ही न हो। लेकिन मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि वे इस तरह बहुत काल तक छिपकर जंगलों में नहीं रह सकते। मैं आज ही अपने आधे अनुचरों को इस काम के लिए नियुक्त करता हूँ कि वे लोग नागवर्मा और करवीर की खोज में लग जायें!" उग्राक्ष ने चित्रसेन को आश्वासन दिया।

जो एक बाघचर्मधारी चित्रसेन के पक्ष में शामिल हो गया था, उसके मन में यह विश्वास नहीं था कि उग्राक्ष के अनुचर या अमरपाल भी उन दो दुष्टों को बन्दी बना सकेंगे। उसने निराशापूर्वक सिर हिलाकर कहा, "महाराज, मेरा सन्देह है कि वे दोनों अब तक पूर्वी समुद्र में स्थित ज्वालाद्वीप के लिए प्रस्थान कर चुके होंगे।"

चित्रसेन के मन को भी कोई ऐसी ही शंका व्यथित बना रही थी। तभी उग्राक्ष ने चित्रसेन से विदा माँगी और जंगल में निर्मित अपने क़िले की ओर अपने अनुचरों के साथ प्रस्थान किया।

दो-तीन महीने गुज़र गये। इस बीच चित्रसेन को अपने गुप्तचरों के द्वारा अचानक यह ख़बर मिली कि राज्य में सर्वत्र चोरियां, डकैतियां, लूटपाट और आगजनी के कार्य ज़ोर पकड़ते जा रहे हैं। अराजकता घर कर रही है तथा प्रजा के अन्दर भय बढ़ रहा है। उसे यह भी समाचार मिला कि ये लुटेरे भलीभांति प्रशिक्षित और साथ ही पूरी तरह निर्भीक हैं। इन्हें प्राणों का कोई मोह नहीं है। ये जंगल के संकरे रास्तों और पहाड़ों की तलहटियों में छिपे रहते हैं तथा अचानक हमला करके यात्रियों एवं गाँवों को लूट लेते हैं और सब जगह बड़ा भयानक दृश्य उपस्थित कर देते हैं। अगर कोई सामना करने का साहस करता है तो उसका घर ही नहीं, पूरा गाँव जला डालते हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि इनमें से एक को भी कोई राजसैनिक पकड़ नहीं पाया। अगर कोई घायल होकर हाथ भी लग गया, तो वह अपने पास छिपे कठिन विष का सेवन कर तुरन्त जान दे देता है। इसलिए यह भी संभव नहीं है कि उन लुटेरों के मुँह से उनके सरदार का नाम जाना जा सके या उनके अड्डों का पता लगाया जा सके।

ये सब समाचार जानकर चित्रसेन ने गहरा सोच-विचार कर एक युक्ति निकाली और अपने विश्वस्त सेवकों से गाँव-गाँव तथा जंगल की सभी छोटी-बड़ी बस्तियों में इस आशय का ढिंढोरा पिटवा दिया कि अब तक जो लोग लूट-खसोट करके जनता में आतंक पैदा करते रहे हैं, उन्हें क्षमा किया जाता है। यदि वे अपने हथियारों के साथ कपिलपुर में आकर आत्मसमर्पण कर दें तो उनमें से प्रत्येक व्यक्ति को खेती करने के लिए भूमि दी जायेगी।

चित्रसेन की इस युक्ति ने काम किया। एक हफ़्ता के अन्दर लगभग पचास लुटेरे अपने हथियारों के साथ कपिलपुर में आ पहुँचे। वे सब राजभवन के बाहरी आँगन में एकत्रित होगये। चित्रसेन ने अपने नये सेनापति के रूप में नियुक्त अमरपाल को अपने साथ लिया और उन लुटेरों के पास पहुँचा। लुटेरों में से कुछ लोगों को अमरपाल ने पहचान लिया और चित्रसेन से कहा, "महाराज, इनमें से कुछ लोग द्रोही नागवर्मा के साथी हैं। इन पर विश्वास करके इन्हें ज़मीन-जायदाद देना ख़तरे से ख़ाली न होगा।"

"तुम लोगों का नेता नागवर्मा कहाँ है? क्या उसने तुम्हें यहाँ भेजा है?" चित्रसेन ने लुटेरों से पूछा।

"महाराज, आपकी शंका सही है कि कभी हमने नागवर्मा के अधीन काम किया था, पर फिलहाल हमारा कोई नेता नहीं है। जब हम नागवर्मा की आज्ञा से कपिलपुर के दुर्ग में घुसे थे, तब अचानक छिपे हुए आपके सैनिकों और उग्राक्ष के राक्षसों ने हम पर हमला बोल दिया था। हममें से अधिकांश लोग मारे गये थे, कुछ इधर-उधर भागकर बच गये थे। हम वे ही बचे हुए लोग हैं। पर उसी समय से हमें इस बात का बिलकुल पता नहीं है कि नागवर्मा का क्या हुआ? वह कहाँ है और क्या कर रहा है? आप हमारी बात सच मानिये!" लुटेरों के नेता जसवीर नाम के एक आदमी ने कहा।

"तुम्हारी बातों पर मैं कैसे विश्वास करूँ?" चित्रसेन ने पूछा।

"महाराज, आपका ढिंढोरा सुनकर इस विश्वास के साथ हम आपकी सेवा में हाज़िर हुए हैं कि आत्मसमर्पण के बाद हमें राजभक्त

जसवीर बोला, "महाराज, जब सर्वत्र यह समाचार फैल जायेगा कि आपने हमें क्षमा करके हमें एक नागरिक की हैसियत से राज्य की सुरक्षा में ले लिया है, तब बाकी बचे लोग भी आपकी शरण में आजायेंगे ।"

अमरपाल को अब भी पूरा विश्वास नहीं था। उसने गुप्त रूप से चित्रसेन के कान में कहा, "महाराज, इन लोगों की बातें विश्वसनीय प्रतीत नहीं होतीं । मैं तो सोचता हूँ कि इन्हें तब तक कारागार में बन्दी बनाकर डाल दिया जाये, जब तक हम इस बात का पता न लगालें कि इनके पीछे द्रोही नागवर्मा का हाथ है अथवा नहीं ? और ये लोग अब भी नागवर्मा से किसी रूप में जुड़े हैं या नहीं ?"

"अमरपाल, यह उचित नहीं है । इससे मेरा वचन भंग होगा और जनता में मेरे वचन का कोई मूल्य न रह जायेगा ।" चित्रसेन ने असहमत होकर कहा ।

"फिर हम किसी और तरीके से इनकी परीक्षा लेते हैं । मैं इनमें भय पैदा करता हूँ ।" यह कहकर अमरपाल ने लुटेरों की ओर मुड़कर कठोर स्वर में कहा "आप लोग सुनें ! हमारे महाराज की यह पक्की धारणा है कि तुममें से कुछ लोग अवश्य ही नागवर्मा और ज्वालाद्वीप के बाघचर्मधारियों के नेता करवीर का पता जानते हो। अगर तुम लोग सच्ची बात प्रकट न करोगे, तो हमारे महाराज तुम्हारे सिर कटवा देंगे ।"

अमरपाल के मुँह से यह धमकी सुनकर

नागरिकों के रूप में जीने का मौक़ा दिया जायेगा। असली बात तो यह है कि हम जनता में आतंक फैलाने के लिए नहीं, बल्कि अपना पेट पालने के लिए तथा अपनी कोई हैसियत बनाने के लिए ही लूटपाट एवं चोरी-डकैती पर आमादा होगये थे। हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमारे गुनाह क्षमा करें और हमें अपनी प्रजा के रूप में स्वीकार करें ।" जसवीर ने आगे बढ़कर कहा ।

"ठीक है, मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करके तुम्हें खेतीबारी के लिए ज़मीन देने की व्यवस्था करता हूँ । पर तुम तो यहाँ केवल पचास के लगभग लोग हो । बाकी और कहाँ हैं ? निश्चय ही तुम लोगों की संख्या पचास से कहीं अधिक होनी चाहिए ।" चित्रसेन ने कहा ।

लुटेरों के नेता जसवीर ने अपनी मुट्ठी आगे बढ़ायी। उसके साथ उसके अनुचरों ने भी अपनी बंधी हुई मुट्ठी को आगे कर दिया। तब जसवीर ने पूरी तरह निर्भय और दृढ़ स्वर में चित्रसेन से कहा, "महाराज, हम लोग हित और हानि दोनों के लिए तैयार होकर आपके पास आये हैं। देखिये, हमारी मुट्ठियों के अन्दर क्या है? इनमें है पल भर में जान लेनेवाला कालकूट विष। आपके सैनिक हमें स्पर्श कर सकें, इससे पहले ही हम इस विष के द्वारा अपने प्राण दे सकते हैं। मैं आपके विश्वास के लिए एक बार और शपथ खाता हूँ कि हम उस नागवर्मा और करवीर के बारे में सचमुच ही कुछ नहीं जानते।"

लुटेरों के नेता जसवीर की बात सुनकर चित्रसेन तथा अमरपाल निश्चिंत होगये और उन्हें उसकी बात पर पूरा यक़ीन होगया। चित्रसेन ने वहाँ जमा लुटेरों की ओर देखकर मुस्कराते हुए कहा, "आज से तुम सब लोग हमारी प्रजा हो और राज्य के अन्य नागरिकों की भाँति ही मान्य हो! तुम्हें वे सब अधिकर प्राप्त रहेंगे जो अन्य नागरिकों को प्राप्त हैं। मैं तुम्हें राजधानी के निकट ही खेती की ज़मीन देने की व्यवस्था करता हूँ।"

चित्रसेन का आश्वासन पाकर सभी लुटेरे एक स्वर में जय-जयकार कर उठे— "महाराजा चित्रसेन की जय!" उनके नारों से सारा राजभवन गूंज उठा।

जब राज्य में फैले अन्य लुटेरे-दलों को यह समाचार मिला कि महाराजा चित्रसेन ने किसी भी लुटेरे को दंड नहीं दिया है, बल्कि उन्हें ज़मीन दी है तथा नागरिकता का अधिकार दिया है तो सारे दलों ने एकत्रित होकर राजधानी कपिलपुर में प्रवेश किया और राजा चित्रसेन के सामने आत्म समर्पण कर दिया।

राजा चित्रसेन के मन में यह विश्वास दृढ़ होगया कि उसका शासन अब सुचारु रूप से चलेगा और उसमें अब किसी तरह की अराजकता जन्म नहीं लेगी। फिर भी, यदा-कदा उसके मन में यह सन्देह अपना सिर उठाता कि राजद्रोही नागवर्मा कहाँ है? वह जिंदा है या नहीं? अगर जिंदा है तो उसकी गतिविधियां क्या हैं? उसके मन में सदा एक शंका सुगबुगाती रहती। सेनापति अमरपाल राजा चित्रसेन को बराबर यही

बताता कि निश्चय ही नागवर्मा करवीर के साथ ज्वालाद्वीप में चला गया है और वह किसी भी दिन उन भयंकर पक्षियों के साथ राज्य पर हमला कर सकता है ।

राज्य में सब कुछ ठीक चलते हुए भी चित्रसेन को नागवर्मा की चिंता थी । उसका चित्त व्याकुल रहता । तभी उसकी.पत्नी कांतिमती गर्भवती हुई । चित्रसेन की चिंता और अधिक बढ़ गयी । जन्म लेनेवाला शिशु लड़का हो या लड़की,वह उग्राक्ष की अमानत होगा । उसे पाँच साल तक पाल-पोसकर राक्षसों के नेता उग्राक्ष को अर्पित करना होगा ।

नौ महीने बाद रानी कांतिमती ने एक दिन सूर्योदय के समय एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया । सारे राज्य में आनन्द मनाया गया । उत्सव के रागरंग के बीच ही उग्राक्ष राजभवन में पहुँचा और उसने नवजात राजकुमार को दूर से ही देखा और आनन्द के कारण बच्चे की तरह उछल पड़ा ।

"महाराज, आज से पाँच वर्ष बाद यह बालक मेरा हो जायेगा ।" उग्राक्ष ने कहा ।

समय बीतता गया । इस बीच जनता में इस बात की चर्चा फैल गयी कि रात में आकाश में जलते हुह शोलों की तरह कोई चीज़ दिखाई देती है । वे शोले, हो न हो, अग्निपक्षी ही हैं । धीरे-धीरे यह समाचार चित्रसेन तक भी पहुँचा । राज्य में चारों तरफ़ फैले गुप्तचरों ने इस समाचार की पुष्टि की कि वे शोले नहीं, अग्निपक्षी ही हैं ।

राजा चित्रसेन के ऊपर यह एक नयी विपदा आगयी । इस बीच राजकुमार अमितसेन भी पाँच वर्ष का होगया । एक दिन प्रातः काल राक्षस उग्राक्ष तूफ़ान की तरह आया और राजमहल के सामने खड़ा होगया ।

"महाराज, मैं राजकुमार को लेने आया हूँ । राजकुमार कहाँ है ?" उग्राक्ष खुशी से उतावला हो रहा था ।

"उग्राक्ष, थोड़ा रुको ! राजकुमार अभी आरहा है । उसे नये वस्त्राभूषणों से सजाया जा रहा है ।" चित्रसेन ने उत्तर दिया ।

राजा चित्रसेन के चेहरे पर किसी प्रकार का दुख अथवा चिंता का भाव न देखकर उग्राक्ष को बड़ा विस्मय हुआ । राजा चित्रसेन अपनी प्रथम संतान को इतने निश्चिंत भाव से मुझे दे रहे हैं,

CHITRA

कहीं राजकुमार अंधा या लंगड़ा तो नहीं ?

उग्राक्ष इस प्रकार सोच ही रहा था कि दासियां एक स्वस्थ, सुन्दर, सुसज्जित बालक को लेकर उसके सामने उपस्थित हुई और बालक को उग्राक्ष के सामने खड़ा कर दिया । उग्राक्ष उत्साह में आकर तालियां बजाने लगा और उसने उसे उठाकर अपने कंधे पर बैठा लिया । उग्राक्ष ने चित्रसेन से कहा, "महाराज, आपने अपने वचन का पालन करके मुझ पर जो उपकार किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता ।" यह कहकर उग्राक्ष चल पड़ा । उसने दुर्ग का द्वार पार करके जंगल में प्रवेश किया ।

उग्राक्ष अभी कुछ ही दूर चला था कि उसके कंधे पर बैठे बालक ने हठ करके कहा, "बाबा, मुझे पेड़ के नीचे पड़ी वह सूखी लकड़ी चाहिए ।"

उग्राक्ष ने बालक को कंधे पर से उतारा और सूखी लकड़ी लाकर बालक के हाथ में देते हुए प्यार से पूछा, "बेटा, तुम यह लकड़ी लेकर क्या करोगे ?"

"रसोईघर में अगर कोई कुत्ता या मुर्गा आयेगा तो उसे भगा दूँगा ।" बालक ने उत्तर दिया ।

बालक का उत्तर सुनकर उग्राक्ष चौंक पड़ा । एक राजकुमार के मुँह से यह कैसी विचित्र बात ? रसोईघर के कुत्ते-मुर्गों को भगाने के काम से राजपुत्र का क्या सम्बन्ध ?

"बेटा, तुम्हारा पिता क्या काम करता है ?" उग्राक्ष ने पूछा ।

"रसोईघर में खाना पकाता है । जब कोई कुत्ता मांस या दूसरे खाने पर झपटता है तो मैं उसे भगा देता हूँ । अब मैं उसे इस लकड़ी से पीट दिया करूँगा ।" लड़के ने उत्तर दिया ।

"हँअ, धोखा ! ऐसा दग़ा । खानसामे के लड़के को राजकुमार बताकर मुझे सौंप दिया ?" उग्राक्ष का चेहरा विकराल होगया । उसने रौद्ररूप धारण किया और लड़के को अपने कंधे पर बिठाकर हुँकार करता हुआ कपिलपुर के दुर्ग की ओर चल पड़ा ।

(क्रमशः)

जय-पराजय

दृढ़व्रती विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आये, पेड़ पर से शव उतारकर कंधे पर डाला और सदा की भाँति मौन हो श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में वास करनेवाले बेताल ने पूछा, "राजन, कार्य-सिद्धि के लिए आप जो श्रम उठा रहे हैं, वह अपूर्व है। पर कभी-कभी अनेक यातनाएं झेलकर मनुष्य जो श्रम करता है, विवेकशीलता के अभाव में वह सब व्यर्थ हो जाता है। महत्वाकांक्षी और योग्य मनुष्य भी कभी-कभी अपनी सफलता को ठुकरा कर जय को पराजय में बदल देता है, इसके उदाहरण के रूप में मैं आपको सुनन्द नाम के एक युवक की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनिये।

बेताल कहानी सुनाने लगा :

ज्वालामुखी नाम के देश पर राजा सुमेरराज का राज्य था। राजा सुमेरराज अपने धार्मिक स्वभाव और न्यायप्रियता के लिए विशेष रूप से

बेताल कथा

प्रसिध्द थे। उनके केवल एक पुत्री थी, नाम था सुचरिता ।

पुत्र न होने के कारण राजा का सारा प्रेम सुचरिता पर केंद्रित था। सुचरिता ने उच्चशिक्षा प्राप्त की थी। युद्ध-विद्याओं के अलावा उसने आचार्यों के संरक्षण में सारे शास्त्रों का एवं राजनीति का अध्ययन किया था। वह शासन के कार्यों में पिता की सहायता करती । इसप्रकार उसने अपने पिता के मन से पुत्र के अभाव के दुख को दूर कर दिया था ।

एक बार राजा सुमेरराजा किसी विचित्र व्याधि का शिकार होगये। खाने - पीने में उनका स्वाद जाता रहा और पीड़ा के कारण वे दिन पर दिन दुर्बल होते चले गये। राजवैद्यों ने अनेक प्रयत्न किये, पर उन्हें राजा को निरोग करने में सफलता नहीं मिल सकी ।

राजा सुमेरराज की हालत को देखकर राजकुमारी सुचरिता अत्यन्त व्याकुल हो उठी । उसने महामंत्री को बुलवाया और पिता के साथ परामर्श करके तथा उनकी अनुमति लेकर यह ढिंढोरा पिटवाया कि जो महाराज को स्वस्थ करेगा, उसे आधा राज्य पुरस्कार में दिया जायेगा।

इसके बाद भी कोई प्रयोजन सिध्द न हुआ। अनेक इलाजों के बाद भी दिन प्रतिदिन रोग सांघातिक रूप लेता चला गया ।

ज्वालामुखी राजधानी के निकट के एक गाँव तुलसीपुर में सुनन्द नाम का एक ग़रीब युवक रहा करता था। वह अकेला और अनाथ था। एक समय का भोजन पाने के लिए वह अनेक प्रयत्न करता, पर वह भी उसे न मिलता। उसकी इस गरीबी को देखकर कोई भी गृहस्थ उसे अपनी कन्या देने को तैयार नहीं था ।

सुनन्द का धैर्य समाप्त होगया। वह अपनी इस ग़रीबी से खीजकर आत्महत्या करने के विचार से गाँव से दस कोस की दूरी पर स्थित पहाड़ पर पहुँचा। वह पहाड़ की चोटी पर चढ़ गया और वहाँ से घाटी में कूदने को ही था कि उसी समय उसे पीछे से किसी ने भारी स्वर में कहा, "रुक जाओ !"

सुनन्द चौंक पड़ा। उसने पीछे मुड़कर देखा, एक राक्षस उसकी तरफ बढ़ा आ रहा है। पास आने पर उसने कहा, "तुम मरना चाहते हो?

क्यों ?"

सुनन्द तो मरने के लिए ही आया था, इसलिए वह राक्षस को देखकर डरा नहीं, बल्कि उसने बड़े निश्चिंत भाव से अपनी सारी रामकहानी उस राक्षस को सुना दी ।

सुनन्द की बात पूरी होने पर राक्षस हँस पड़ा और बोला, "तुम अजीब युवक हो ! मैं अनेक वर्षों से इस पहाड़ पर रहता आ रहा हूँ , पर मैंने आज तक यहाँ किसी ऐसे युवक को नहीं देखा, जो आत्महत्या के इरादे से आया हो । खैर, निश्चिंत रहो ! मैं तुम्हें मरने नहीं दूँगा ।"

"मेरी दीन-हीन हालत को जानकर भी तुम ऐसा कह रहे हो ? पर मैं भी संकल्प करके आया हूँ। अब मैं किसी भी हालत में गाँव लौटकर नहीं जाऊँगा ।" सुनन्द ने दृढ़ स्वर में कहा ।

राक्षस कुछ देर सोचकर बोला, "अच्छी बात है ! मैं तुम्हारी सहायता करूँगा । मैंने जीवन में कभी पुण्य नहीं कमाया, मुझे थोड़ासा पुण्य तो प्राप्त होगा । अब तुम मेरी बात सावधान होकर सुनो ! इस देश का राजा सुमेरराज एक विचित्र प्रकार की व्याधि से पीड़ित है । उसने ढिंढोरा पिटवाया है कि जो उसे निरोग बनायेगा, उसे आधा राज्य दिया जायेगा । मानव-समाज का आधा राज्य पाकर एक राक्षस क्या करेगा ? मैं तुम्हें सुमेरराज को स्वस्थ करने वाली औषध बता देता हूँ। अगर सौगन्धिक जड़ी बूटी को पीसकर रीठे के पतले रस में घोलकर राजा को पिला दिया जाये तो राजा की व्याधि दूर हो जायेगी । वह बूटी

यहीं मिल जायेगी । मैं उसे तुम्हें दे देता हूँ। तुम राजा को निरोग करके आधा राज्य पाओ और सुखी रहो !"

सुनन्द अत्यन्त आनन्दित हुआ । वह सौगन्धिक जड़ी-बूटी लेकर राजधानी में पहुँचा । राजा के दर्शनों के लिए उसे थोड़ा प्रयत्न करना पड़ा । जब उसे राजा के दर्शनों के लिए लाया गया तो उसने अपने पास की जड़ी को पीसकर उसे रीठे के पतले रस में घोल लिया और उसे राजा को पिला दिया । राजा की व्याधि बड़ी तेज़ी से घटने लगी । दूसरे दिन राजा काफ़ी स्वस्थ थे । चौथे दिन वे पूर्ण रूप से स्वस्थ होगये ।

राजा को स्वस्थ पाकर राजपरिवार के आनन्द का ठिकाना न रहा । सबने मुक्तकंठ से सुनन्द की

प्रशंसा की ।

राजा सुमेरराज ने पाँचवे दिन मंगल स्नान किया, नये वस्त्र धारण किये और बड़े उत्साह से राजसभा बुलायी । राजा ने भरी सभा में एक बार फिर सुनन्द के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर उसे धन्यवाद दिया । इसके बाद घोषणा की कि जल्दी ही एक शुभ मुहूर्त निकालकर आधे राज्य के राजा के रूप में सुनन्द का राज्याभिषेक किया जायेगा ।

उस समय सुनन्द मौन बना रहा । सभा विसर्जित होने के बाद उसने एकान्त में राजा सुमेरराज से भेंट की और निवेदन किया, "महाराज, अभी मैं राज्याभिषेक नहीं चाहता । कुछ काल के लिए इसे स्थगित कर दीजिए ! मैं अभी जा रहा हूँ, फिर स्वयं आकर आपके दर्शन करूँगा ।" यह कहकर सुनन्द चला गया ।

राजधानी से निकलकर सुनन्द एक ऐसे आचार्य के यहाँ पहुँचा जो युद्धविद्या के बहुत बड़े विद्वान माने जाते थे । उनके यहाँ उसने अस्त्रविद्या का अभ्यास किया ।

युद्ध विद्याओं में कुशलता प्राप्त करने के बाद सुनन्द ने कुछ समय तक विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन किया । लगन और मेहनत से उसने इसमें भी अच्छी सफलता प्राप्त की ।

जब राजधानी में ज्वालामुखी देवी को लक्ष्य कर नवरात्रि-उत्सव मनाया जा रहा था, तब सुनन्द भी छद्मवेश में राजधानी पहुँचा । नवरात्रि-उत्सव में हर वर्ष अनेक प्रतियोगिताओं का आयोजन होता था और राजा के समक्ष अनेक विद्याओं एवं युद्धविद्याओं का प्रदर्शन किया जाता था । सुनन्द ने जयन्त इस छद्म नाम से उन प्रतियोगिताओं में भाग लिया । अनेक पुरस्कार प्राप्त किये और जनसमुदाय की प्रशंसा का पात्र बना ।

उत्सवों के समाप्त होने के बाद सुनन्द राजा सुमेरराज से मिला और उन्हें अपना वास्तविक परिचय दिया । राजा को बड़ा आश्चर्य और साथ ही आनन्द भी हुआ ।

सुनन्द ने विनम्रता पूर्वक राजा से निवेदन किया, "महाराज, प्रतियोगिताओं में आप मेरे प्रदर्शन से प्रभावित हुए, यह मेरे लिए सौभाग्य की बात है । आपने मुझे आधे राज्य पर अभिषिक्त करने का वचन दिया था, किन्तु मैं आपसे आज एक और कामना का निवेदन करना चाहता हूँ ।"

सुमेरराज ने विस्मित होकर पूछा, "सुनन्द, क्या है तुम्हारी वह कामना ?"

"महाराज, राजकुमारी सुचरिता देवी की स्वीकृति मिले तो मैं उनके साथ विवाह करना चाहता हूँ ।" सुनन्द ने कहा ।

सुमेरराज ने गंभीर होकर पूछा, "यदि राजकुमारी इस विवाह के लिए सहमत न हो तो ?"

"ऐसी स्थिति में मैं अर्ध राज्य पर अपने अधिकार को भी त्यागकर चला जाऊँगा ।" सुनन्द ने कहा ।

राजा सुमेरराज समझ न पाये कि सुनन्द के हृदय में राजकुमारी सुचरिता के लिए जिस आकर्षण ने जन्म लिया है, वह प्रेम से प्रेरित है अथवा ज्वालामुखी देश पर सार्वभौम अधिकार पाने की आकांक्षा से प्रेरित है । उन्होंने इस समस्या को सुलझाने का भार सुचरिता पर ही डालने का निश्चय किया और सुनन्द से कहा कि वह कुछ समय बाद उनसे मिले ।

राजा सुमेरराज ने सारा वृत्तान्त सुचरिता को सुना दिया । सुचरिता ने सारी बातें बड़े ध्यान से सुनीं, फिर कहा, "पिताजी, मैं सुनन्द के व्यवहार को ठीक से समझ नहीं पायी । मैं उससे स्वयं बात करना चाहती हूँ । वह मुझसे कल मिल ले, ऐसी व्यवस्था आप कर दें ।"

दूसरे दिन सुनन्द के आते ही राजकुमारी सुचरिता ने पूछा, "सुनन्द, तुम सूर्य की प्रतिष्ठा चाहते हो या चंद्रमाकी ?"

सुनन्द कुछ देर मौन रहा, फिर बोला, "राजकुमारी, मुझे क्षमा कीजिएगा । मैं सूर्य की भाँति ही जीवन व्यतीत करना चाहूँगा ।" यह उत्तर देकर वह सिर झुकाकर वहाँ से चला गया ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा, "राजन, इतने बड़े दुर्भाग्य के बाद सुनन्द को आधा राज्य मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । उसने अत्यन्त मेहनत और लगन से विद्याभ्यास किया और जब फलप्राप्ति का समय आया तो वह सब कुछ त्यागकर चला गया । क्या उसका यह निर्णय अत्यन्त अविवेक पूर्ण नहीं है ? उसने सुचरिता के साथ विवाह किस उद्देश्य से प्रेरित होकर करना चाहा ? सुचरिता के प्रश्न के उत्तर में उसने सूर्य की भाँति जीवन व्यतीत करने की बात कही और

सूर्य जैसे तेजवान राजपद को त्यागकर चला गया! इन प्रश्नों का समाधान आप अगर जानकर भी न देंगे तो आपका सिर फटकर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा ।"

विक्रमार्क ने कहा, "राज्य-शासन के लिए केवल शास्त्र-अध्ययन या युद्धविद्याओं का अभ्यास पर्याप्त नहीं है । इसके लिए राजनीति विषयक अनेक बातों का ज्ञान आवश्यक है । अनेक चालों, षडयंत्रों को विफल करने की कुशलता और तीक्ष्णता आवश्यक होती है । सुनन्द ने समझ लिया कि उसके पास इस प्रकार के राजनैतिक ज्ञान का अभाव है । वह राज वैभव को भी नहीं छोड़ना चाहता था । उसने सोचा था कि राजकुमारी सुचरिता की मदद से वह अपनी कमियों पर परदा डाल सकेगा और राज्य-भार संभालने में सक्षम हो सकेगा । लेकिन सुचरिता ने सूर्य और चंद्रमा के उदाहरण से जो संकेत दिया, वह सूर्य के अधिक और चंद्रमा के कम प्रकाश की ओर नहीं था । सुचरिता का तात्पर्य था कि सुनन्द सूर्य के स्वयं प्रकाश से जीना चाहता है या चंद्रमा के दूसरों से प्राप्त पराधीन प्रकाश से जीना चाहता है ? उसका इशारा इस बात की ओर था कि स्वयं ज्ञान न रखनेवाले तुम मेरे ज्ञान से राज्य-संचालन करना चाहते हो तो तुम्हें मैं कैसे स्वीकार कर सकती हूँ ?

इसके अलावा उसके शब्दों में यह हित उपदेश भी था कि तुम स्वावलम्बी बनकर अपनी बुद्धि के बल पर आत्मनिर्भर होकर जियो, यही गौरवपूर्ण है । सुनन्द ने राजकुमारी के इस भाव को तुरन्त हृदयंगम कर लिया और यह निश्चय किया कि वह अपनी शिक्षा-दीक्षा, योग्यता को आधार बनाकर किसी योग्य पद पर काम करते हुए जीवन बितायेगा । राजपद उसके लिए ठिक नहीं है और न यह शासन कार्य में सफल हो सकता है ! यह सोचकर वह वहाँ से चला गया । यह एक प्रकार से सुनन्द की जय-पराजय दोनों ही थी ।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुन : पेड़ पर जा बैठा ।

(कल्पित)

दर्पण

सदियों पहले चीन देश के एक छोटे से गाँव में वांग नाम का एक युवक गृहस्थ रहता था। वह नागरिक जीवन से दूर एक पिछड़े हुए इलाके में रहता था, जहाँ किसी प्रकार की आधुनिक सभ्यता का प्रवेश भी नहीं था। जिस बस्ती में वह रहता था, वहाँ जाने के लिए न कोई सड़क थी, न कोई बटिया ही। उस बस्ती के निवासी बहुत ही सीधे-सादे और भोले थे। उनमें भी सबसे भोला था वांग।

एक बार वांग ने अपनी बहंगी में कोयले भरे और वह उन्हें बेचने के लिए शहर की ओर चल पड़ा। शहर में कोयलों की बड़ी मांग थी। वांग इससे पहले कभी शहर नहीं गया था।

वांग को उसकी पत्नी सुइंग गाँव के छोर तक छोड़ने आयी। उसने अपने पति से कहा, "कुशलतापूर्वक जाओ और खूब लाभ के साथ लौटो। पर मेरे लिए एक कघां ज़रूर लेते आना।"

'कंघी!" वांग ने विस्मित होकर पूछा। उसने कभी यह शब्द नहीं सुना था। उन दिनों चीन की औरतें लकड़ी की बनी कंघियों को सिर में रख लेती थीं। वे कंघियां टेढ़ी होती थीं।

"देखो, वह कंघी उसकी तरह होगी।" सुइंग ने पूरब में पीले पड़ रहे दूज के चांद को दिखाकर कहा।

शहर में सारा कोयला बेचने के बाद एक शाम वांग शहर के एक मार्ग से गुज़र रहा था। तब उसे अपनी पत्नी की बतायी हुई चीज़ का ख्याल आया। पर तब तक उसे उस चीज़ का नाम भूल चुका था। तभी उसे याद आया कि उसकी पत्नी ने आकाश में चमकती किसी चीज़ के साथ उस चीज़ का मिलान बताया था। उसने आँख उठाकर आकाश की तरफ़ देखा तो उसे पूरब की दिशा में गोल-गोल चमकता चंद्रमा दिखाई दिया। उसने

चीन की लोक कथा

सोचा कि शायद ऐसी ही कोई गोल चीज़ लाने के लिए सुइंग ने कहा था। पर नाम वह याद नहीं कर पा रहा था। तभी उसे एक दूकान पर एक गोल-सी चीज़ दिखाई दी। तुरन्त वांग ने दूकानदार को उस वस्तु का दाम चुकाया और उसे लेकर अपने गाँव की तरफ़ चल पड़ा।

वांग एक दिन कुशलतापूर्वक अपने घर पहुँच गया और उसने ख़रीदी हुई उस वस्तु की पोटली को पत्नी सुइंग के हाथ में दे दिया।

सुइंग ने पोटली खोलकर उस वस्तु को निकाला। वह एक दर्पण था। दर्पण में सुइंग को अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया तो वह घबरायी। उस गाँव के किसी भी व्यक्ति ने दर्पण देखना तो दूर, उसका नाम तक नहीं सुना था। सुइंग की समझ में बस इतना आया कि उसका पति वांग शहर से एक दूसरी औरत ले आया है।

उसी गाँव में सुइंग का पीहर था। वह रोती हुई अपनी माँ के पास पहुँची और उसके हाथ में दर्पण देकर बोली, ''माँ, देखो ! तुम्हारा दामाद वाँग शहर से एक दूसरी पत्नी को ले आया है।'' उसकी माँ को भी दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई दिया। वह बोली, ''बेटी सुइंग, अगर तेरे पति को दूसरी औरत लानी ही थी तो किसी जवान औरत को ले आता। वह तो एक बूढ़ी को उठा लाया है।''

सुइंग को रोते देखकर सबने यही सलाह दी कि मुखिया से शिकायत करनी चाहिए। मुखिया ने वांग के लाये हुए दर्पण में देखा। उसके भीतर अपनी ही तरह के एक मुखिया को देखकर उसका दिमाग चकरा गया।

मुखिया ने कहा, ''तुम लोग क्या मेरी जगह किसी और मुखिया को नियुक्त करने के लिए ले आये हो ? मैं अभी सबको सबक सिखाता हूँ।'' यह कहकर उसने अपने सेवकों को आदेश दिया कि इन सब फरियादियों के कोड़े लगाये जायें। दर्पण में दूसरे मुखिया को देखने के विचार से सबने उस दर्पण को पकड़कर खींचा।

इसी खींचातानी में दर्पण नीचे गिर पड़ा और टूटकर चूर-चूर होगया। दर्पण के नष्ट होने के साथ ही सबकी शिक़ायतें दूर होगयीं।

हमारे देश के आश्चर्य

सांची का स्तूप
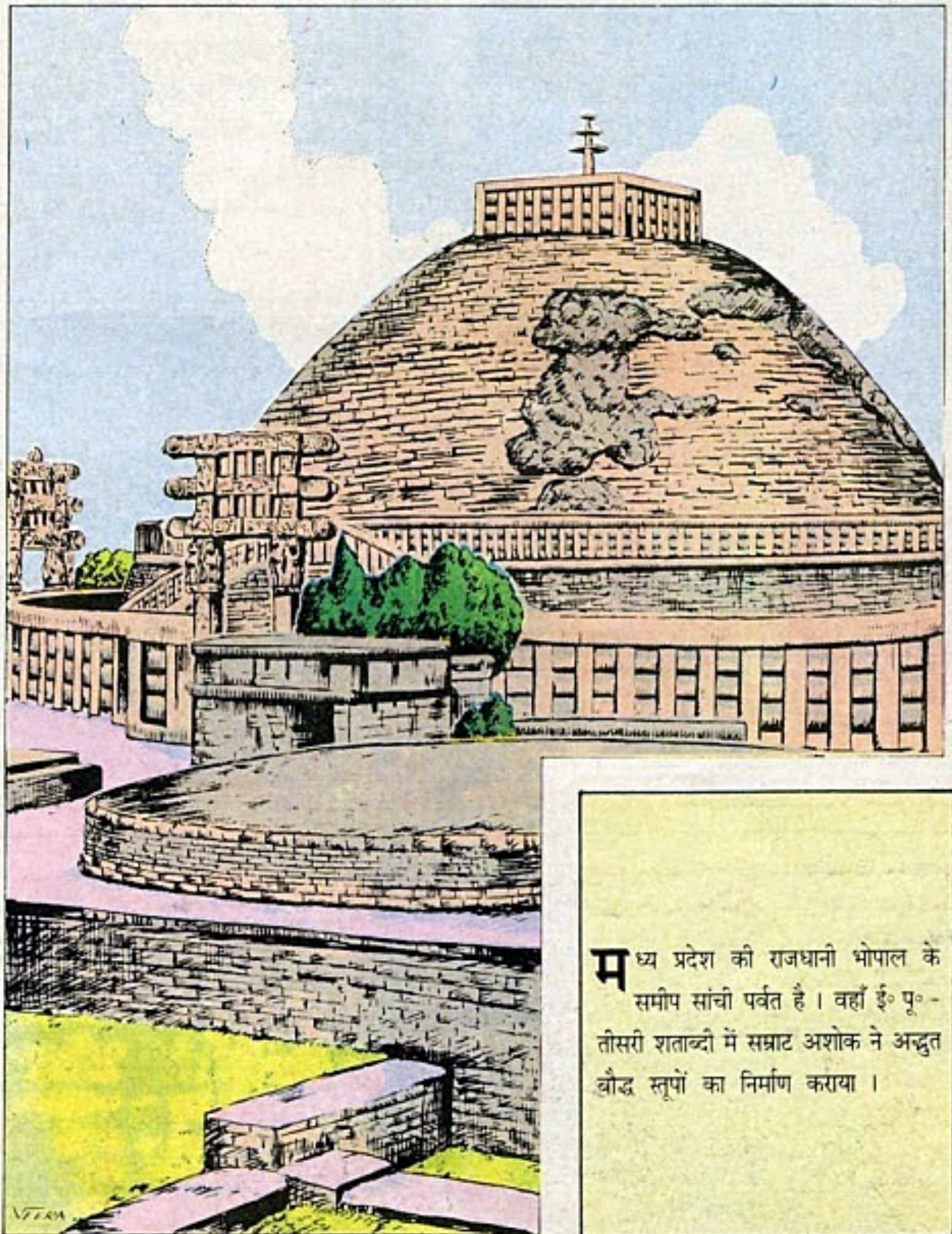
मध्य प्रदेश की राजधानी भोपाल के समीप सांची पर्वत है। वहाँ ई॰ पू॰ - तीसरी शताब्दी में सम्राट अशोक ने अद्भुत बौद्ध स्तूपों का निर्माण कराया।

इन स्तूपों के समीप अत्यन्त प्राचीन नगर का होना निस्सन्दिग्ध है। सम्राट अशोक के पुत्र महेंद्र ने बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिए जब सिंहल देश में जाने की तैयारी की, तब उससे पहले का कुछ समय विदिशा के निकट ध्यान में बिताया था। उस समय महेंद्र की माता ने उसकी रक्षा का दायित्व अपने ऊपर लिया था।

उन दिनों वहाँ केवल एक छोटा-सा स्तूप मात्र था। इसके कुछ दिन बाद सम्राट अशोक उस प्रदेश में आये और वहाँ के सुन्दर एवं शांत वातावरण पर मुग्ध हो उठे। वहाँ बौद्ध भिक्षुओं के लिए उन्होंने बौद्ध-विहारों के निर्माण का निश्चय किया।

भवन निर्माण के लिए श्रेष्ठ शिल्पों के निर्माण का भार विदिशा नगर के शिल्पियों को सौंपा गया। शिल्पियों ने भगवान बुद्ध की जीवनी से सम्बन्धित अनेक कथाओं को अद्भुत शिला-शिल्पों के माध्यम से प्रकट किया।

कुछ समय बाद वह स्थान सैकड़ों बौद्ध भिक्षुओं का निवास बन गया। अनेक बौद्ध भिक्षु वहाँ पठन-पाठन, ध्यान-धारणा आदि करने लगे। उस स्थान का वातावरण शुद्ध होगया। मानसिक शांति तथा ज्ञानार्जन के लिए असंख्य लोग वहाँ आने लगे।

१३ वीं शताब्दी के बाद बौद्ध भिक्षुओं ने किसी कारण से इस स्थान को त्याग दिया। धीरे-धीरे इन भवनों एवं स्तूपों के चारों तरफ़ पेड़-पौधे उग आये। यह पूरा प्रदेश एक जंगल में परिवर्तित होगया। वहाँ झाड़-झंखाड़ इस तरह फैल गये कि स्तूप भी उनके अन्दर ढंक गये।

१८१८ ई० में जब ब्रिटिश सेना इन पहाड़ों से होकर गुज़र रही थी, तब सेनापति टेलर ने इस पर्वत की विचित्र आकृति को देखा। वह विस्मित होकर उसके निकट गया। झाड़-झंखाड़ों से आच्छादित स्तूपों को देखकर वह अत्यधिक आनन्दित हुआ।
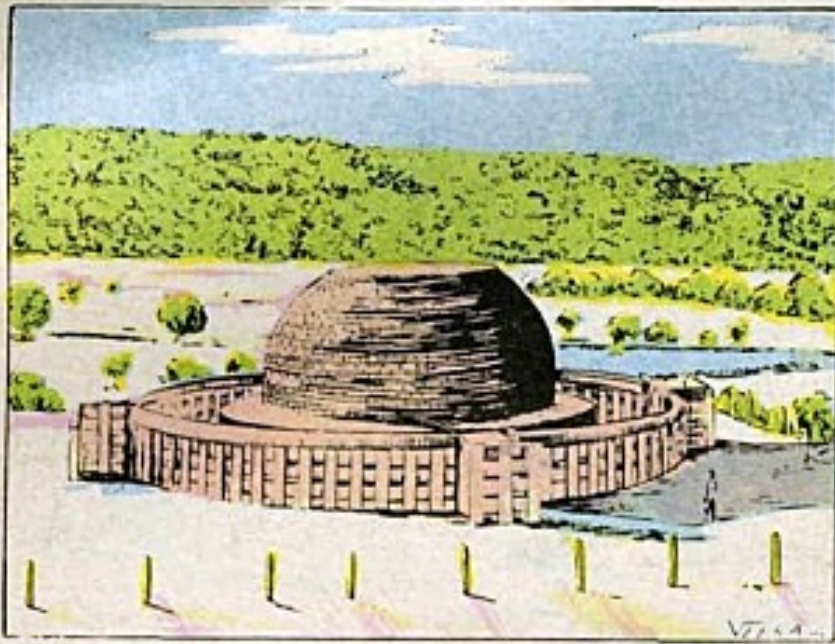
कई शताब्दियां से अज्ञात चले आ रहे भवन प्रकाश में आगये। प्रमुख सांची स्तूप से लगभग दस किलोमीटर की दूरी पर बुद्ध के शिष्य सारिपुत्र और मौद्गलायन के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

सांची स्तूप के चारों ओर अद्भुत शिल्पकला से शोभित चार सिंहद्वार हैं। दो हज़ार वर्ष पूर्व इन द्वारों का निर्माण हुआ था।
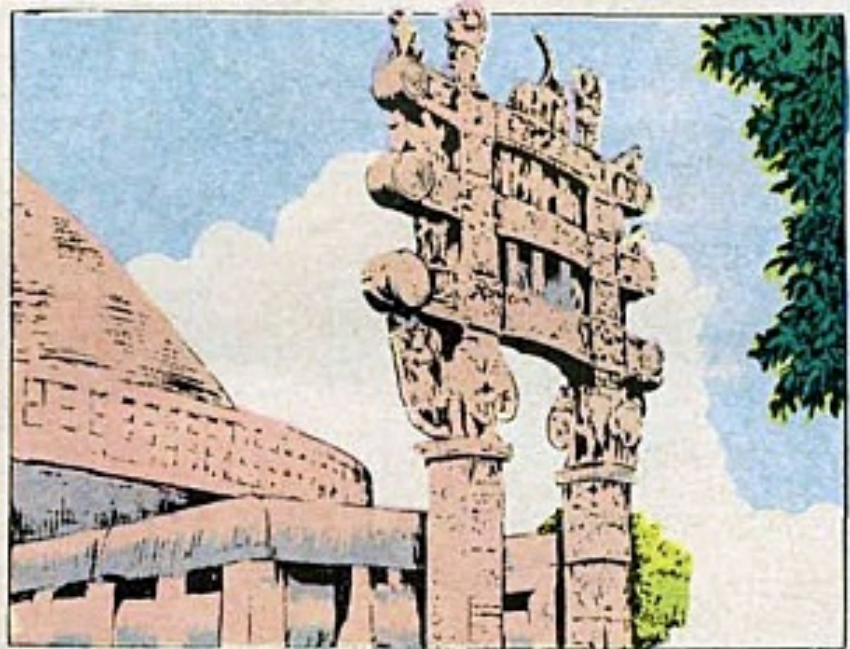
स्तूप की भित्तियों पर बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक घटनाओं को अंकित किया गया है। एक बन्दर के द्वारा बुद्ध भगवान को शहद समर्पित करनेवाला दृश्य भी यहाँ शिल्पांकित हुआ है। फिर भी, यहाँ बुद्ध की मूर्ति नहीं, बोधि वृक्ष है। सुन्दर सुविशाल प्रदेश के बीच शोभायमान सांची स्तूप भारतीय संस्कृति का अद्भुत प्रतीक स्मारक है।

असली चेहरा

श्रीमुख एक धनाढ्य व्यापारी था। अभी वह चालीस वर्ष का था कि उसकी पत्नी का देहान्त होगया। उनके कोई संतान नहीं थी। उसने दूसरा विवाह नहीं किया। समय बीतता गया। अब श्रीमुख अस्सी वर्ष का वृद्ध था।

पिछले बीस वर्षों से गोपाल और उसकी पत्नी मल्लिका अपने मालिक श्रीमुख की सेवा बड़ी लगन से करते आ रहे थे। श्रीमुख उन्हें वेतन के रूप में उनका खर्च देता था और वे दोनों घर के अहाते में ही एक झोंपड़ी में रहते थे। नाम के लिए वे श्रीमुख के नौकर थे, पर सच देखा जाये तो वे श्रीमुख को अपने पिता समान मानकर उसकी सेवा करते थे।

उन्हीं दिनों दूर गाँव मे बसा श्रीमुख का भांजा नारायण अपनी पत्नी मालती के साथ अपने मामा को देखने आया और वहीं टिक गया।

नारायण का तो उद्देश्य ही यह था कि वह धीरे-धीरे अपने मामा की संपत्ति पर कब्ज़ा कर ले। उसे गोपाल और मल्लिका का वहाँ रहना ज़रा भी अच्छा नहीं लगा। नारायण और मालती प्रतिदिन उनकी कोई न कोई गलती निकालते और श्रीमुख के सामने उनकी बुराइयां करते। उन्होंने गोपाल और मल्लिका पर छोटी-मोटी चोरियों का इल्ज़ाम भी लगाया।

नारायण और मालती तो श्रीमुख के रिश्तेदार थे। गोपाल और मल्लिका आख़िर नौकर ठहरे। उसने उनकी बातों पर विश्वास कर लिया और गोपाल एवं मल्लिका को नौकरी से निकाल दिया। उस दिन से श्रीमुख के घर की पूरी जिम्मेदारी नारायण और मालती पर आगयी। श्रीमुख की सेवा का भार भी उन्होंने संभाला।

नारायण और मालती ने अपनी मीठी-मीठी बातों से श्रीमुख को विश्वास दिला दिया कि इस वृद्धावस्था में उसकी सेवा-सुश्रुषा करने के लिए

रमाकांत पाठक

निकट रिश्तेदारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। उसे नौकरों पर नहीं छोड़ा जा सकता। संतानविहीन श्रीमुख ने अपने बाद अपनी सारी संपत्ति अपने भांजे नारायण के नाम छोड़ जाने का निश्चय कर लिया ।

मालती और नारायण की योजना काम करने लगी। वे दोनों तो केवल श्रीमुख की संपत्ति में ही दिलचस्पी रखते थे, गोपाल और मल्लिका का कांटा निकल जाने के बाद वे श्रीमुख के प्रति लापरवाही दिखाने लगे। वे उसकी ज़रूरतों पर कम ध्यान देते, बात अधिक मिलाते। वे यही चाहते थे कि यह बूढ़ा जितनी जल्दी मर जाये, उतना ही अच्छा है। वे श्रीमुख को समय पर खाना भी नहीं पहुँचाते थे। इसके अलावा खाने में कुछ ऐसे पदार्थ रख देते थे, जिनका खाना श्रीमुख के लिए वर्जित था। इन्हीं सब कारणों से श्रीमुख जल्दी ही बीमार पड़ गया और उसने चारपाई पकड़ ली ।

अपनी बीमारी की हालत में उसने अपने मित्र कोदंडपाणि वैद्य को समाचार भिजवाया । कोदंडपाणि ने श्रीमुख की जाँच करके पूछा, "तुम्हें बुखार कितने दिन से है ? और तुम्हारे हाथ कब से काँपने लगे हैं ?"

"मैं पिछले एक हफ़्ते से बहुत तक़लीफ़ में हूँ। पलंग से नीचे पैर भी नहीं रख सका। अब जीवन का कोई विश्वास नहीं रहा, इसलिए तुम्हारे पास ख़बर भेजी।" श्रीमुख ने कहा।

कोदंडपाणि को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने पूछा, "क्या सात दिन से तुम्हारे बीमार होने की सूचना तुम्हारे भाँजे नारायण को नहीं मिली ?"

श्रीमुख कुछ कहना ही चाहता था कि नारायण झट से दर्वाज़ा खोलकर अन्दर आगया और बोला, "वैद्यजी, मुझे इस बात का विश्वास नहीं है कि इस उम्र में मामाजी को अधिक दवाइयों का सेवन करना चाहिए। बुढ़ापे में दवाइयां काम नहीं देतीं। यों ही शरीर को तक़लीफ़ देना बेकार है।"

कोदंडपाणि ने अपने क्रोध पर नियंत्रण रखकर कहा, "पर मनुष्य को अपना प्रयत्न तो करना चाहिए। बीमार को यों ही बेइलाज नहीं छोड़ देना चाहिए। मैं कुछ कोशिश करता हूँ।" यह कहकर कोदंडपाणि ने अपने दवाइयों के सन्दूक से एक शीशी निकाली और बोला, "श्रीमुख, अब तुम

आँख मूंदकर सो जाओ ! तुम्हें डरने की आवश्यकता नहीं है । मैं औषधि के सेवन की विधि तुम्हारे भांजे को और उसकी बहू को समझा दूँगा ।" यह कहकर कोदंडपाणि दरवाजे पर आया ।

नारायण और मालती भी वैद्य के पीछे-पीछे आये । कोदंडपाणि ने दवा की शीशी उनके हाथ में देकर उसके प्रयोग की विधि अच्छी तरह समझा दी और मात्रा के बारे में विशेष निर्देश देकर वह अपने घर चला गया ।

तीन दिन के अन्दर श्रीमुख पूर्ण स्वस्थ होगया। वह चौथे दिन कोदंडपाणि से मिलने उसके घर गया और बोला, "दोस्त, तुमने जो दवा दी, उसने संजीवनी बूटी का-सा काम किया । बीमार पड़ने से पहले मेरे अन्दर जो शक्ति थी, अब दुगुनी होगयी है । दुर्बलता का निशान भी न रहा ।"

"मुझे बड़ी प्रसन्नता है, श्रीमुख ! पर यह तो बताओ, मेरी दी हुई औषधि को तुम्हारे भांजे, बहू ने तुम्हें कितनी बार और कितनी मात्रा में पिलाया !" कोदंडपाणि ने पूछा ।

"नारायण और मालती दिन में तीन बार छह चम्मच के हिसाब से वह दवा मुझे पिलाते थे । सचमुच ही उन दोनों ने मेरी बहुत सेवा की है ।" श्रीमुख बोला ।

श्रीमुख का उत्तर सुनकर कोदंडपाणि के चेहरे का रंग बदल गया । उसने कहा, "अच्छा, तो यह बात है! श्रीमुख, तुम इसी समय उन दोनों को उनके गाँव भेज दो ! ऐसा न करोगे तो वे किसी दिन तुम्हारी जान ले लेंगे । वे तुम्हारी ज़मीन-जायदाद और धन-संपत्ति के लोभ में
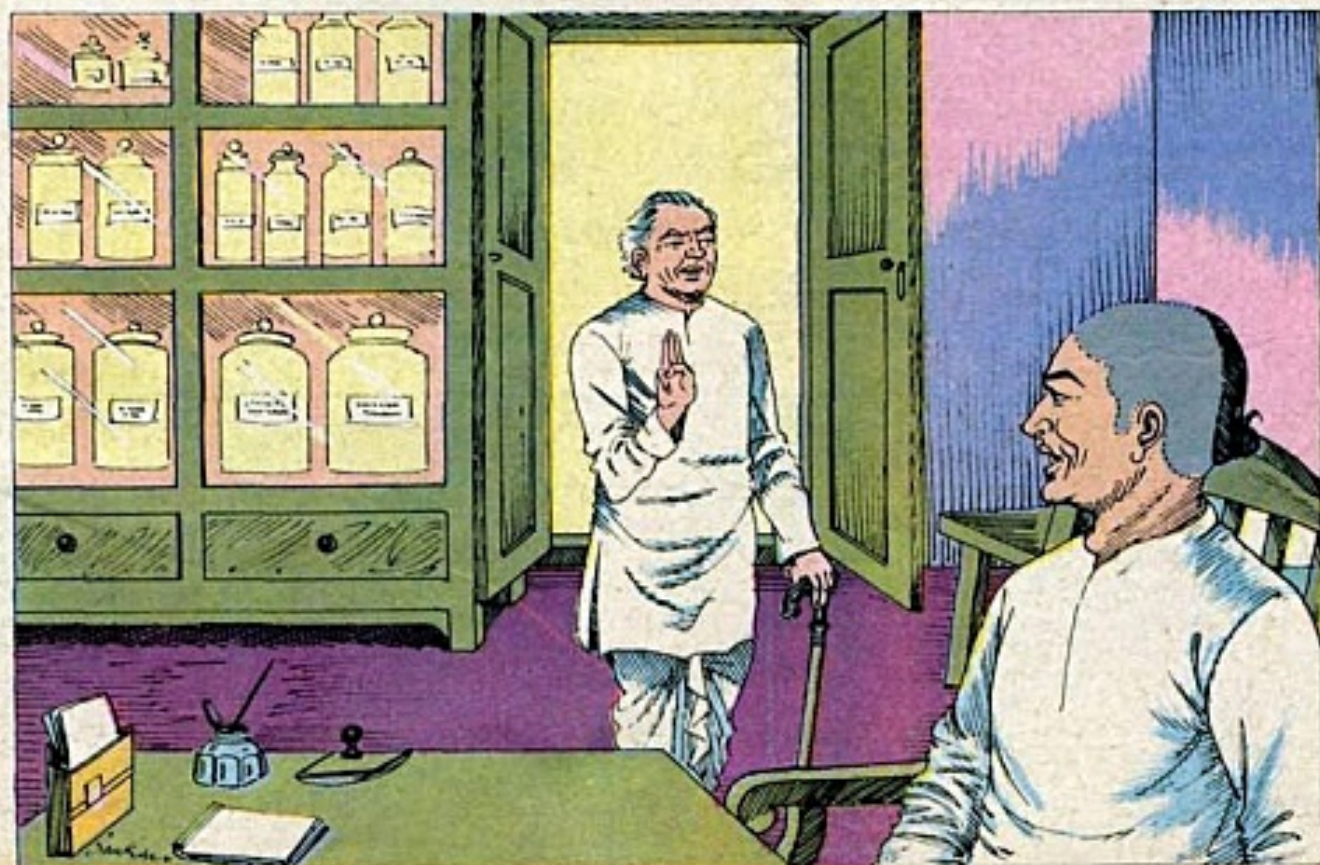
तुम्हारे पास पड़े हुए हैं। तुम्हारे हित से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। मैंने उन्हें स्पष्ट चेतावनी दी थी कि प्रतिदिन दो बार दो चम्मच से अधिक औषधि न हो। इससे अधिक औषधि देने पर प्राणो के लिए ख़तरा हो सकता है।"

"उफ़, ऐसा है!" श्रीमुख ने आश्चर्य प्रकट किया। फिर पूछा, "कोदंडपाणि, तुमने जो मात्रा बतायी थी, उससे अधिक सेवन करने के बाद भी मेरे लिए कोई ख़तरा क्यों नहीं पैदा हुआ ?"

तब कोदंडपाणि मुस्कराकर बोला, "वास्तव में इस औषधिका सेवन अधिक मात्रा में ही हितकारी होता है। इससे कोई हानि नहीं होती। मैं उन दोनों का असली चेहरा जानना चाहता था। इसलिए मैंने उन्हें यह चेतावनी दी थी। अब तो तुम समझ गये न कि वे तुम्हारे घर पर क्यों डेरा डाले हुए हैं ?"

कोदंडपाणि की बात सुनकर श्रीमुख को गोपाल और मल्लिका का स्मरण हो आया। बीस वर्ष तक उन्होंने कितने जी जान से उसकी सेवा की थी।

श्रीमुख ने कुछ चिंतित होकर कहा, "कोदंडपाणि, तुम गोपाल और मल्लिका को तो जानते ही हो। अपने भांजे, बहू की चालाकी पर विश्वास करके मैंने उन दोनों को निकाल दिया। वे बड़े वफ़ादार थे। अगर फिर से मुझे मिल जाते तो कितना अच्छा होता!"

कोदंडपाणि ने श्रीमुख के कंधे पर थपकी देकर कहा, "वे दोनों मेरे पास हैं। पत्ते एवं जड़ी-बूटी लाने तथा दवाइयां पीसने में मेरी मदद करते हैं। तुम्हें बीमार जानकर वे तड़प उठे थे। उन्हें जो पीड़ा हुई, उसका बयान नहीं किया जा सकता। अगर तुम्हें आवश्यकता हो तो अपने यहाँ फिर से रख लेना। मैं भेज दूँगा।"

"पाणि, आवश्यकता तो है ही। वे दोनों मेरे बेटे, बहू के बराबर हैं। अच्छा, तो अब मैं चलता हूँ।" यह कहकर श्रीमुख ने अपने वैद्य दोस्त से विदा ली और घर लौटकर दूसरे ही दिन नारायण और उसकी पत्नी मालती को विदा कर दिया।

इसके बाद गोपाल और मल्लिका श्रीमुख के घर चले आये।

लक्ष्मण मौन खड़े रोते रहे । इसके बाद सीता को प्रणाम कर उन्होंने उनकी प्रदक्षिणा की और नाव पर आरूढ़ हो उत्तरी तट पर पहुँचे । वहाँ रथ पर सवार होकर उन्होंने दूसरे तट पर अनाथ स्त्री की तरह रुदन करती सीता की ओर बार-बार मुड़कर देखा और भारी मन से अयोध्या को लौट गये । सीता अपलक दृष्टि से क्रमशः दूर होते जा रहे उस रथ को देखती रहीं, फिर उसके ओझल होते ही बड़े ज़ोर से विलाप कर उठीं । उनके रुदन से सारा बन गूंज उठा ।

उस निर्जन वन में अकेली रुदन करती सीता को कुछ मुनिकुमारों ने देखा । वे दौड़कर वाल्मीकि मुनि के पास गये और बोले, "गुरुदेव, गंगा-तट पर एक नारी न मालूम क्यों रुदन करती बैठी है । देखने में वह आकाश से उतरी हुई देवी के समान लगती है । ऐसे रूप-सौन्दर्य का वर्णन तो हमने काव्यों में ही पढ़ा है । वह पवित्रता का आगार और करुणा का भंडार जान पड़ती है । ऐसा लगता है कि उस महीयसी नारी पर वज्रपात हुआ है । आप चलकर उसे देखने की कृपा करें और उसकी सहायता करें !"

वाल्मीकि मुनि तत्काल उठे । उन्होंने अपने शिष्यों को तथा अर्घ्य को लिया एवं सीता के निकट पहुँचे । उन्होंने सीता को पहचान कर कहा, "स्वर्गीय महाराज दशरथ की पुत्रवधू का मैं स्वागत करता हूँ । बेटी, तुम्हारा आगमन यहाँ क्यों हुआ, यह बात मैंने अपनी अन्तर्दृष्टि से जान ली है । मैं त्रिलोकी का ज्ञान रखता हूँ । मेरे रहते तुम्हें किसी प्रकार का भय नहीं है । मेरा आश्रम समीप में ही है । वहाँ अनेक तपस्विनियां और मुनि

९. सीता का वाल्मीकि आश्रम में प्रवेश

कन्याएं हैं, वे तुम्हारा ध्यान रखेंगी। तुम किसी प्रकार की चिंता मत करो और यह अर्घ्य स्वीकार कर मेरे आश्रम में प्रवेश करो। मेरा आश्रम तुम्हारी पवित्रता से पवित्र और तुम्हारी महनीयता से महान होगा। वहाँ तुम अपने घर के समान निवास करना।"

सीता ने वाल्मीकि को प्रणाम किया और उनके साथ आश्रम में गयीं। वाल्मीकि ने सीता को मुनि-पत्नियों और आश्रम कन्याओं के हाथ में सौंपकर उनसे आग्रह किया कि इनके साथ आदर एवं स्नेह का व्यवहार करें। वाल्मीकि मुनि ने गर्भवती सीता के सुख-विश्राम की पूरी व्यवस्था की।

अयोध्या लौटते हुए लक्ष्मण ने सुमंत्र से कहा, "सुमंत्र, भाभी सीता के वियोग में भाई श्रीराम को कैसा दुख पहुँचा होगा! निर्दोष महारानी सीता को कैसे दुख झेलने पड़ रहे हैं!"

"लक्ष्मण, यह राम की नियति है। प्राचीन काल में मुनियों ने बताया था कि रामचंद्र को उनके जीवन-काल में सुख की उपलब्धि अत्यन्त अल्प होगी और उन्हें अपने निकट व्यक्तियों के वियोग का दुख सहन करना पड़ेगा। यह एक अत्यन्त रहस्यमय कहानी है जो मैं तुम्हें बता रहा हूँ। तुम इसे अपने तक ही रखना और भरत, शत्रुघ्न से भी मत कहना।" यह कहकर सुमंत्र ने वह कथा कह सुनायी:

एक दिन महाराजा दशरथ वशिष्ठ ऋषि के आश्रम में गये। उस समय वहाँ महामुनि अत्रि के पुत्र दुर्वासा भी उपस्थित थे। मुनि-तपस्वियों ने महाराजा दशरथ का सत्कार किया। इसके बाद दशरथ ने वार्तालाप के बीच दुर्वासा मुनि से प्रश्न किया, "मुनिवर, मेरी संतान का भविष्य कैसा होगा? हमारे राम की आयु कितनी होगी? मेरे अन्य पुत्रों की आयु कितनी होगी? श्रीराम के कितने पुत्र होंगे और उनका जीवन-काल कितना रहेगा?" इन प्रश्नों के उत्तर में दुर्वासा ने दशरथ को एक पुरानी कथा सुनायी:

देवासुर-संग्राम में असुर पराजित होकर महामुनि भृगु की पत्नी की शरण में गये। ऋषि-पत्नी ने उन्हें अभयदान दिया। यह देख विष्णु कुपित हो उठे और उन्होंने भृगु-पत्नी के सिर को अपने चक्रायुध से काट डाला। तब

महर्षि भृगु ने क्रुद्ध होकर विष्णु को शाप दिया, "आप पृथ्वी लोक में जन्म लेकर पत्नी-वियोग के दुख को सहन करेंगे!" इस शाप के प्रभाव से ही विष्णु ने आपके यहाँ राम के रूप में जन्म लिया है ।

रामचंद्र को भृगु महर्षि के शाप का फल भोगना ही पड़ेगा । श्रीराम ग्यारह हज़ार वर्ष तक अयोध्या पर शासन करेंगे और अनेक अश्वमेध यज्ञ संपन्न कर ब्रह्मलोक में जायेंगे । उनके दो पुत्र होंगे । पर उनका जन्म अयोध्या में न होकर किसी अन्य स्थान पर होगा । रामचंद्र उनका राज्याभिषेक करेंगे ।" यह वृत्तान्त दुर्वासा ने दशरथ को सुनाया

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए लक्ष्मण और सुमंत्र संध्या-काल तक गोमती नामक स्थान पर पहुँच गये और वहीं रात्रि व्यतीत की । दूसरे दिन सुबह उन्होंने फिर अपनी यात्रा आरंभ की । रास्ते में लक्ष्मण इस सोच में डूबे रहे कि वे राम को सब कैसे बतायेंगे ? वे उन्हें कैसे बतायेंगे कि सीता के रुदन से बन-प्रदेश भी क्रन्दन कर उठा । पशु-पक्षियों ने भी करुण स्वर से चीत्कार की और वनस्पतियां भी कंपित होगयीं !

रथ अयोध्या पहुँचा । श्रीराम के राजभवन के सामने लक्ष्मण उतर पड़े । भवन के भीतर प्रवेश करके आँसू बहाते दीन लक्ष्मण ने सिंहासन पर विराजमान श्रीरामचंद्र को प्रणाम करके कहा, "मैं आपके आदेशानुसार महारानी सीता को गंगा के तट पर वाल्मीकि आश्रम के निकट छोड़ आया हूँ । महाराज, आप दुखी न हों । वृद्धि से क्षय, उन्नति से पतन, संयोग से वियोग— भाग्य का यह चक्र शाश्वत काल से इसी प्रकार चलता
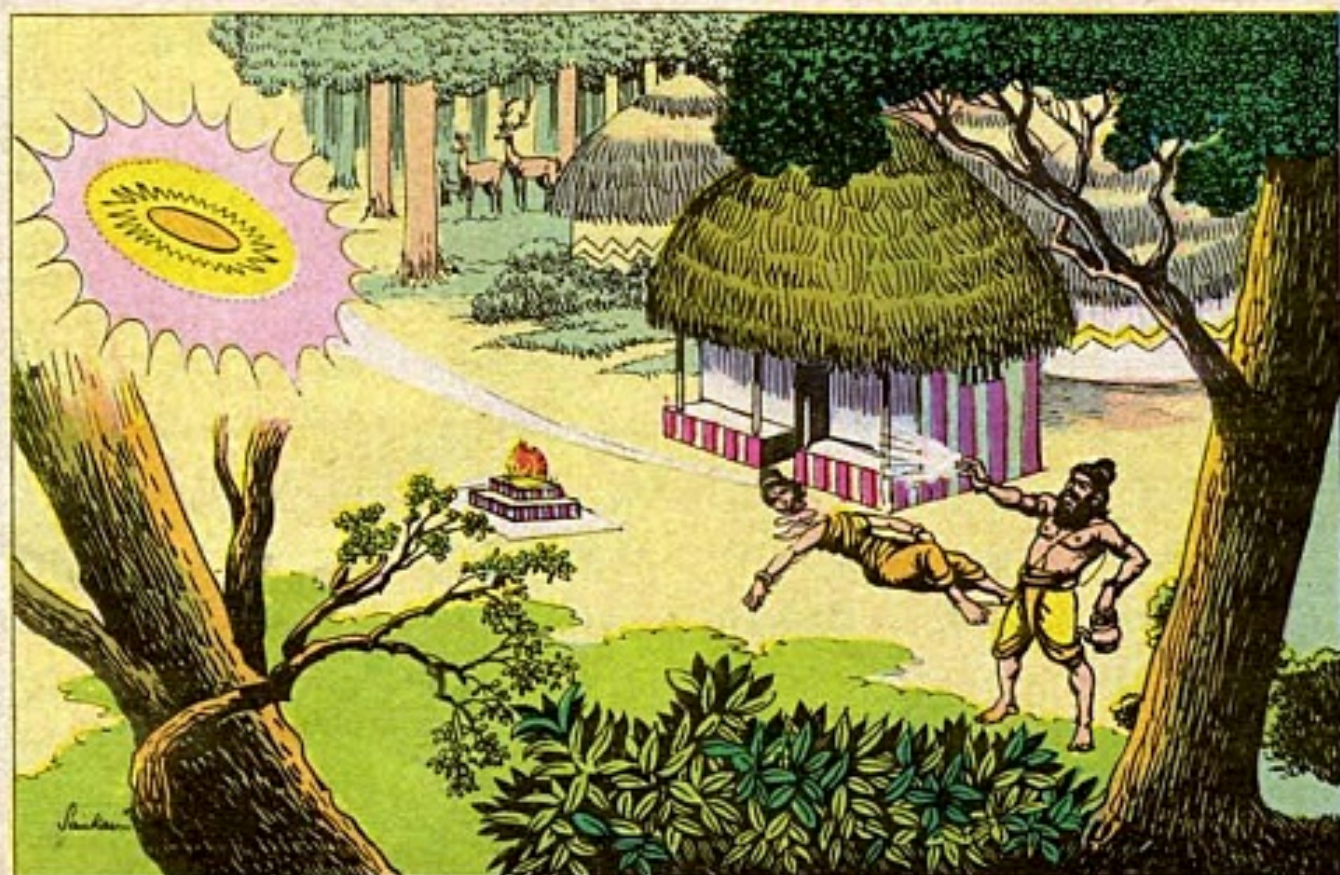
आया है। आपको जो अपयश सहन करना पड़ा है, उसकी छाया कालान्तर में स्वयं दूर हो जायेगी ।"

"लक्ष्मण, तुमने मेरे आदेश का पालन किया, तुम सदा ही मेरे आज्ञाकारी अनुज रहे हो। तुमने सदा ही मेरे आदर्शों में अपना सहयोग दिया है। तुम सीता को वाल्मीकि आश्रम तक छोड़ आये, मुझे बड़ा सन्तोष मिला। मुझे कोई दुख नहीं है।" श्रीरामचंद्र ने कहा।

पिछले चार दिन से श्रीराम ने राजकार्य नहीं देखा था और न तो प्रजा के सम्मुख आकर उसका सुख-दुख ही सुना था। अब वे अपने उत्तरदायित्व को पूरा करना चाहते थे। रात्रि का आगमन होने लगा था। राम ने लक्ष्मण को प्राचीनकाल की कुछ कथाएं सुनायीं, जिनसे बोध मिलता था। उन्होंने सबसे पहले महाराजा नृग की कथा सुनाते हुए लक्ष्मण से कहा :

प्राचीनकाल में महाराजा नृग ने करोडों गायों को ब्राह्मणों को दान में दिया था। एक बार भूल से उन दान दी गयी गायों में से एक गाय महाराजा नृग की गायों के समुदाय में मिल गयी। राजा को इस बात का पता न लगा। इसलिए नृग ने अन्य गायों के दान के समय वह गाय किसी ब्राह्मण को पुन: दान कर दी। पहला ब्राह्मण अपनी गाय को खोया हुआ जानकर उसकी खोज में चल पड़ा। अंत में वह कनखल नामक स्थान पर पहुँचा और उसने एक अन्य ब्राह्मण के घर अपनी गाय को पहचान लिया। उसने उसे अपने दिये हुए पुराने नाम से पुकारा। गाय ने अपने मालिक के स्वर को पहचान लिया और रस्सी तोड़कर उस ब्राह्मण के साथ चल पड़ी। यह देख उस दूसरे ब्राह्मण ने पूछा, "भाई, तुम मेरी गाय हाँककर क्यों ले जारहे हो? यह गाय तो मुझे महाराजा नृग ने दान में दी है।"

प्रथम ब्राह्मण ने कहा, "भाई, महाराजा नृग ने यही गाय मुझे भी दान में दी थी।"

आपस में यह विवाद हल होते न देखकर वे सीधे महाराजा नृग के पास पहुँचे। पर उन्हें बहुत देर तक महाराजा नृग के दर्शन न हो सके। जब बाहर प्रवेश-द्वार पर प्रतीक्षा करते उन्हें कई दिन बीत गये तो वे क्रोधित हो उठे और उन्होंने राजा को शाप दिया कि वह गिरगिट की तरह एक

गड्ढे में जीवन यापन करे और कभी किसी की दृष्टि में न पड़े। राजा नृग को जब इस शाप का समाचार मिला तो उसने ब्राह्मण तपस्वियों से शाप-मोचन की प्रार्थना की। ब्राह्मणों ने उसे शाप-मोचन का उपाय बताते हुए कहा कि कभी यदुवंश में वासुदेव जन्म लेंगे और वे उसे शाप-मुक्त करेंगे। इसके बाद ब्राह्मण वहाँ से चले गये।

महाराजा नृग ने अपने वसु नाम के पुत्र का राज्याभिषेक किया और गिरगिट की भाँति जीवन व्यतीत करने के लिए बन में निकल गया। वहाँ उसने कई गड्ढे खुदवाये और उनके चारों तरफ़ वृक्ष लगवाये ताकि छाया मिल सके। उसने फूलों के पौधे भी लगवाये और अन्त में सबकी दृष्टि से दूर उन गड्ढों में वास करने लगा।

रात का एक प्रहर बीत चुका था। रामचंद्र ने महाराजा नृग की कहानी सुनाने के पश्चात्-लक्ष्मण को महाराजा निमि की कथा सुनायीः

महाराजा निमि इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुए। वे महाराजा इक्ष्वाकु के बारहवें पुत्र थे। निमि ने एक सुन्दर नगर का निर्माण कराया और उसका नाम वैजयन्त रखा। यह नगर अनेक भव्य इमारतों से अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता था। इसमें अनेक उपवन थे, सरोवर थे, झीलें थीं —तरह-तरह के क्रीड़ावन, क्रीड़ापर्वत तथा बाल-उद्यान थे। इस भव्य नगर में वास कर लोग महान सुख का अनुभव करते थे। निमि ने अपने पिता को प्रसन्न करने के लिए एक यज्ञ का संकल्प भी किया और वशिष्ठ ऋषि से अनुरोध किया कि वे उसके ऋत्विक बनें। वशिष्ठ ने कहा
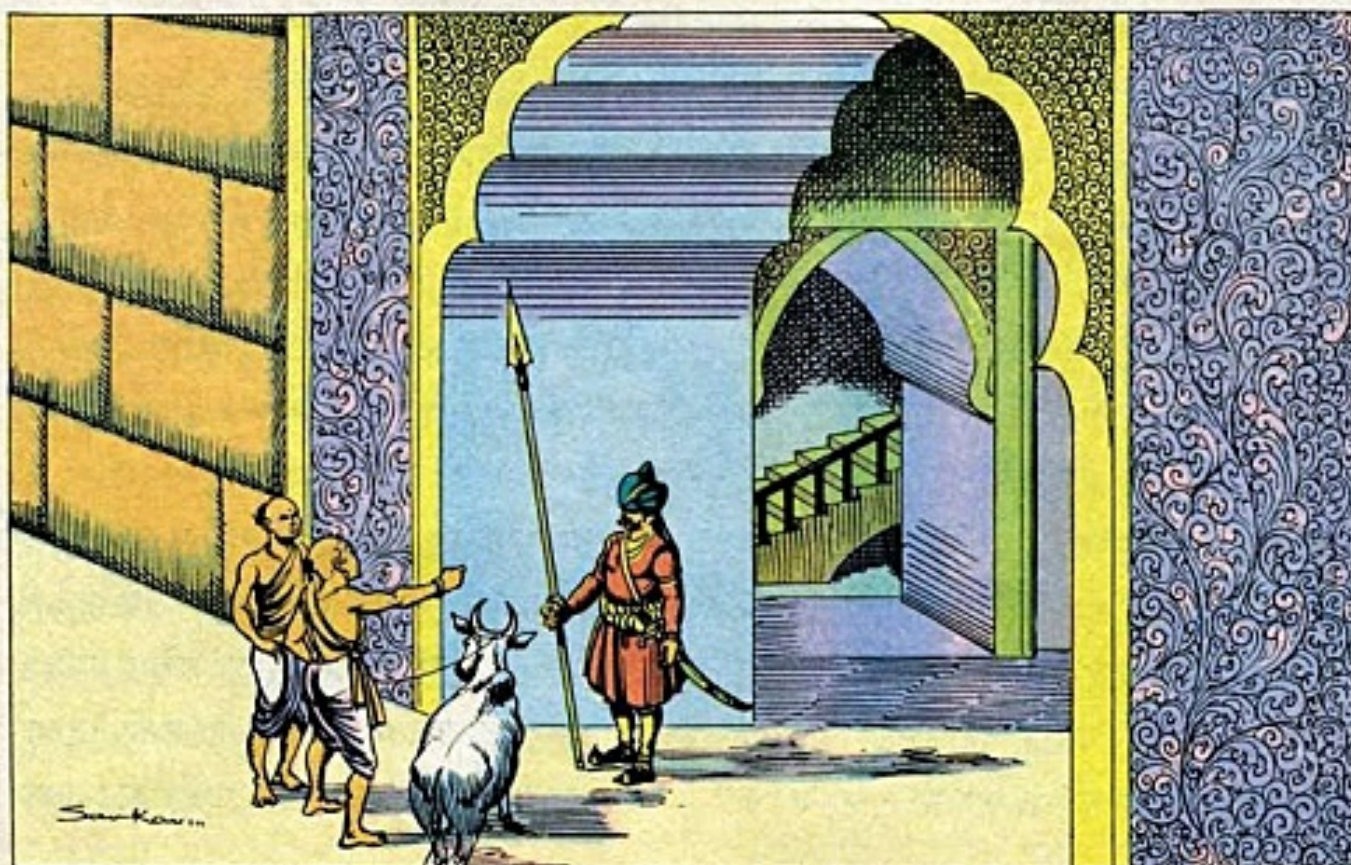
कि इसके पूर्व ही इंद्र उन्हें एक यज्ञ संपन्न कराने के लिए निमंत्रित कर चुके हैं, इसलिए वे इंद्र का यज्ञ पूरा होने के बाद ही निमि का यज्ञ संपन्न करा सकते हैं। वशिष्ठ इंद्र के यज्ञ के अनुष्ठान के लिए चले गये। तब निमि ने महर्षि गौतम को ऋत्विक बनाकर अपना यज्ञ संपन्न किया। इंद्र का यज्ञ समाप्त होने के बाद वशिष्ठ लौटे। जब उन्हें पता लगा कि निमि ने यज्ञ के लिए उनकी प्रतीक्षा नहीं की और गौतम से यज्ञ संपन्न करा लिया है तो वे क्रुद्ध हो उठे और राजा निमि से मिलने गये। उस समय राजा निमि शयन कर रहे थे और निद्रामग्न थे। वशिष्ठ ने कुछ देर तक राजा निमि की प्रतीक्षा की, फिर यह सोचकर कि राजा निमि ने जानबूझकर उनकी अवमानना की है, उन्हें शाप दे दिया, "राजन, तुमने दूसरे मुनि के द्वारा यज्ञ कराकर मेरा अपमान किया है। मैं शाप देता हूँ कि इस अनाचरण के कारण तुम्हारा शरीर अचेतन हो जाये और तुम किसी भी कार्य में अक्षम हो जाओ।"

कुछ देर बाद राजा निमि की नींद खुली तो उन्हें वशिष्ठ के आगमन और शाप का समचार एक साथ मिला। राजा ने वशिष्ठ को शाप दिया। "मुनिवर, आपने निद्रामग्न मुझे शाप दिया है। मैं आपको शाप देता हूँ कि आपका शरीर भी अचेतन हो जाये।"

इस प्रकार एक-दूसरे को शाप देकर राजा निमि और महर्षि वशिष्ठ 'विदेह' होगये। तब वशिष्ठ अपने पिता ब्रह्मा के पास वायु रूप में गये और बोले, "पिताश्री, निमि के शाप के प्रभाव से मैं विदेह बन गया हूँ। देह के अभाव में मैं बड़ी पीड़ा का अनुभव करता हूँ और कोई कार्य नहीं कर पाता। इसलिए मुझ पर अनुग्रह करके मुझे कोई और शरीर प्रदान करने की कृपा करें।"

ब्रह्मा ने वशिष्ठ से कहा, "पुत्र, तुम मित्रावरुण के तेज से पुनः एक शरीर प्राप्त करो!" ब्रह्मा के आशीर्वाद से एक और शरीर प्राप्त कर वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंशी राजाओं के पुरोहित बने।

अब निमि का प्रकरण सुनो! मुनियों ने निमि के शरीर की रक्षा की और विदेह निमि को वर दिया कि वह समस्त प्राणियों के नेत्रों में निवास करेंगे। इसके बाद मुनियों ने निमि की देह का मंथन किया तो उसके भीतर से एक बालक

निकला, जो मिथि कहलाया । इसी बालक के नाम पर मिथिला नगर का निर्माण हुआ । मिथि का ही दूसरा नाम जनक है ।

रामचंद्र के मुख से राजा निमि की कहानी सुनकर लक्ष्मण ने पूछा, "पूज्य अग्रज, क्षत्रिय होकर भी निमि ने वशिष्ठ के प्रति शांति का व्यवहार क्यों नहीं किया ?"

"रोष के कारण किसी भी व्यक्ति की शांति का नाश सहज स्वाभाविक है । क्रोध पर तो केवल ययाति ने ही नियंत्रण रखा था ।" इसके बाद रामचंद्र ने अनुज लक्ष्मण को ययाति की कथा सुनायी :

महाराज ययाति नहुष के पुत्र थे । उनके दो पत्नियां थीं । एक थी महाराजा वृषपर्व की कन्या शर्मिष्ठा और दूसरी थी शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी । राजा ययाति देवयानी से अधिक शर्मिष्ठा को स्नेह और सम्मान देते थे । पुत्रों में भी ययाति को शर्मिष्ठा के पुत्र पुरु के प्रति जो वात्सल्य था, वह देवयानी के पुत्र यदु के प्रति नहीं था । पुरु उत्तम स्वभाव का था और शर्मिष्ठा का बेटा था । इसके साथ ही वह महाराजा ययाति की प्रथम संतान था । पिता पुरु को अधिक प्रेम करते हैं, यह बात यदु सहन नहीं कर पाया ।

एक दिन यदु ने अपनी माता देवयानी से शिकायत करते हुए कहा, "माँ, तुम शुक्राचार्य जैसे महान आचार्य की पुत्री हो । फिर भी तुम इतना अपमान सहन करती हो और तुम्हारा पुत्र मैं भी इतना अपमान सहन करता हूँ । इस अपमान से तो श्रेष्ठ है कि हम दोनों अग्नि में कूदकर प्राण-त्याग करें ! तुम भले ही इस तिरस्कार को सहन कर लो, पर मैं नहीं कर सकता । मैं अवश्य आत्महत्या करूँगा । तुम मुझे अनुमति दो !" यह कहकर यदु विलाप कर उठा ।
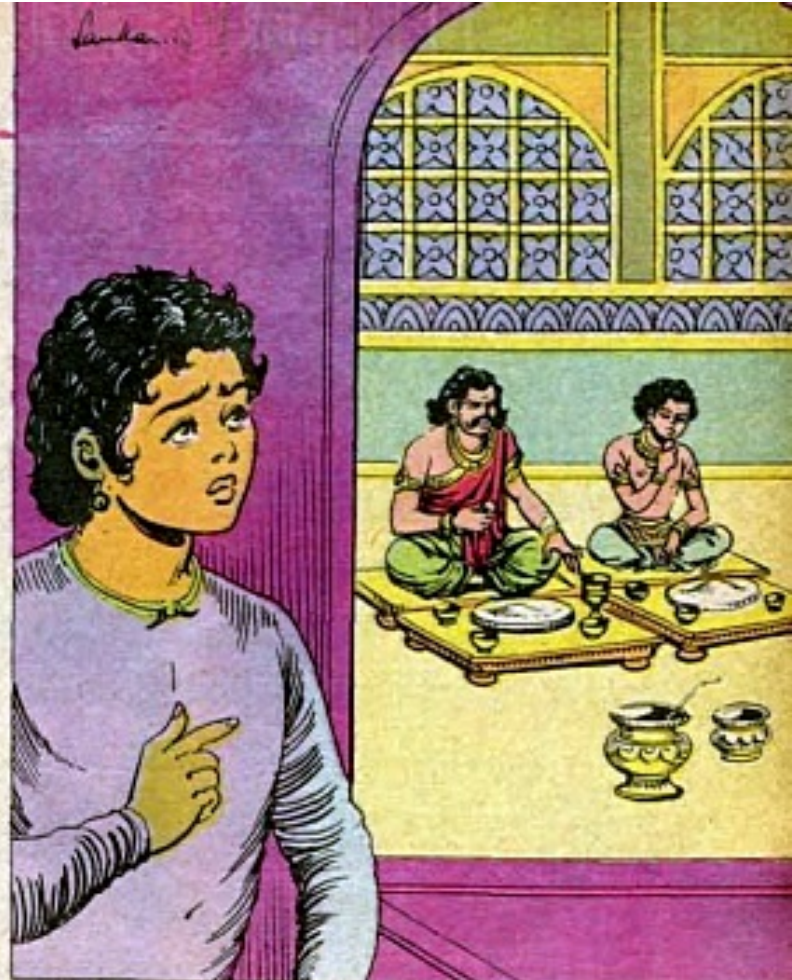
अपने पुत्र का दुख देखकर देवयानी का रोष भड़क उठा । उसने अपने पिता का स्मरण किया । शुक्राचार्य तत्काल वहाँ आ पहुँचे ।

देवयानी ने अपने पिता से कहा, "पिताश्री, मेरे पति मेरे प्रति अत्यन्त अनादर का भाव रखते हैं । मैं यह अपमान अब सहन नहीं कर सकती । मैं आग में कूदकर, विषपान कर या पानी में डूबकर आत्महत्या करना चाहती हूँ ।"

पुत्री का दुख देख शुक्राचार्य का क्रोध भड़क

उठा। उन्होंने ययाति को वृध्द होकर जीने का शाप दिया और अपनी पुत्री देवयानी को सांत्वना देकर अपने निवास को लौट गये। ययाति ने शुक्राचार्य के शाप को बड़ी शांति से स्वीकार कर लिया।

इसके बाद ययाति ने अपने पुत्र यदु को बुलाकर कहा, "पुत्र, मैं सुख-भोगों से पूर्ण रूप से तृप्त नहीं हुआ हूँ। इसलिए क्या तुम थोड़े काल के लिए मेरी वृद्धावस्था को स्वीकार कर लोगे? सुख-भोगों से तृप्त हो जाने के बाद मैं तुम्हारा यौवन तुम्हें लौटाकर अपनी वृधूदावस्था पुन:वापस ले लूँगा।"

"पिताजी, आपके साथ भोजन करने की पात्रता रखनेवाले पुरु के रहते मैं आपकी वृद्धावस्था क्यों स्वीकार करूँ? आप उसी से यौवन क्यों नहीं माँग लेते?" यदु ने कहा।

तब ययाति ने पुरु को बुलाकर उससे भी अपनी कामना दोहरायी। पुरु ने अपने पिता की वृद्धावस्था को पूरे मन से स्वीकार कर लिया। ययाति ने अपनी वृद्धावस्था पुरु को देकर उसका यौवन प्राप्त किया और अनेक सहस्र वर्षों तक राज्य किया तथा सहस्त्रों यज्ञ संपन्न किये। सुख-भोगों का अनुभव कर संतुष्ट हुए। अंत में ययाति ने अपने पुत्र से पुनः वृद्धावस्था ग्रहण कर उसे उसका यौवन लौटाया पुरु ने जो त्याग किया और अपने पिता के प्रति जो श्रद्धा एवं शक्ति प्रकट की, इस से राजा ययाति बहुत प्रसन्न हुए इस उपकार से अत्यन्त अभिभूत हुए, फल स्वरूप महाराजा ययाति ने पुरु को अपना वारिस घोषित किया, और उसका राज्याभिषेक किया। यदु राज्य में कोई अधिकार न पा सका। ययाति के पश्चात् महाराजा पुरु ने प्रतिष्ठानपुर को अपनी राजधानी बनाकर बहुत काल तक राज्य किया। जनता में लोकप्रियता प्राप्त की। साथ ही वे हमारे देश के महान चक्रवर्तियों में से एक माने गये।

राम ने कथा समाप्त की। लक्ष्मण ने अग्रज भाई के सत्संग में कृतार्थता अनुभव की। रात्रि का अवसान हो रहा था। पूरब में सूर्य की किरणें अरुणाभा फैला रही थीं।

ज्ञानोदय

रुद्रपुर का राजा सिंहकेतु अत्यन्त क्रूर और अत्याचारी था। वह प्रजा के हित का कोई विचार न करता था और कर के नाम पर धन वसूल करके उसका बुरी तरह शोषण करता था। जो लोग अपने बुरे हाल के कारण उसे कर नहीं चुका पाते थे, उन्हें वह कोड़ों की मार लगवाता और जो उसके साथ विद्रोह करते, उन्हें सूली पर चढ़वा देता।

राजा सिंहकेतु कैसा भी हो, पर उसका मंत्री धर्मचरण बड़ा ही विवेकवान था। उसने राजा को अच्छे मार्ग पर लाने की बड़ी कोशिश की, पर वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। राजा के अत्याचार बढ़ते गये और राज्य में अराजकता फैल गयी। रुद्रपुर की प्रजा सिंहकेतु के शासन को राक्षस का शासन मानने लगी।

राजा सिंहकेतु को शिकार खेलने का बड़ा शौक़ था। एक दिन उसने दस सैनिकों को साथ लिया और जंगल में निकल गया। जानवरों का पीछा करते हुए वह अपने सैनिकों से अलग होगया। अब सिंहकेतु को होश आया कि वह शिकार के नशे में बहुत दूर आगया है और उसके सैनिकों का कहीं पता नहीं है।

राजा सिंहकेतु ने अकेले भटकते हुए राजधानी की दिशा में बढ़ने का प्रयत्न किया। तभी चार भीमकाय लोगों ने जाल फेंककर सिंहकेतु को बन्दी बना लिया। वे चारों जंगली डाकू थे।

डाकुओं ने सिंहकेतु के मूल्यवान आभूषण लूट लिये और उसे अपने सरदार उग्रकंठ के पास ले गये।

उग्रकंठ ने सिंहकेतु पर तीक्ष्ण दृष्टि डाली और कठोर स्वर में पूछा, "सच बताओ, तुम कौन हो ?"

"मैं रुद्रपुर का राजा सिंहकेतु हूँ।" सिंहकेतु ने उत्तर दिया।

शीला जैन

यह जवाब सुनकर उग्रकंठ ने बड़ी कठोर दृष्टि से अपने अनुचरों को देखा, फिर आदेश दिया, "अरे मूर्खो, यह कोई पराया आदमी नहीं है, हममें से ही एक है। तुरन्त इसे बन्धन-मुक्त करो !"

उग्रकंठ ने राजा के आभूषण उसे लौटाकर कहा, "भाई, क्षमा करो ! मेरे लोगों को यह मालूम न था कि हम सब एक हैं । इसलिए उन्होंने तुम्हें बन्दी बना लिया । अब तुम जा सकते हो ।"

उग्रकंठ की बातों से राजा को आश्चर्य तो हुआ, पर इस समय उसे ख़ास खुशी अपने जीवित बच निकलने की थी । वह डाकुओं के सरदार की बातों पर विचार करते हुए जंगल में अभी कुछ दूर ही चला था कि तभी उसके सामने एक पिशाच आ उपस्थित हुआ । वह हवा के झोंकों के साथ झूम रहा था और विकट अट्टहास कर रहा था । सिंहकेतु साहस करके उसके सामने खड़ा होगया और उसने उस पर प्रहार करने के लिए म्यान से अपनी तलवार खींच ली ।

सिंहकेतु की हरकत देखकर पिशाच खिल खिलाकर हँस पड़ा और बोला, "अरे मूर्ख, क्या तुम इतना भी नहीं जानते कि पिशाचों पर तलवार के वार का कोई प्रभाव नहीं होता ? तुम मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते, पर मैं चाहूँ तो क्षण भर में तुम्हारा सारा लहू चूस सकता हूँ । लेकिन मैं ऐसा नहीं करना चाहता । मैं तो मृत प्राणियों को नोचकर खानेवाला पिशाच हूँ । वैसे तुम बड़े साहसी मालूम होते हो । बताओ तो, तुम कौन हो ?"

"मैं रुद्रपुर का राजा सिंहकेतु हूँ ।" राजा ने उत्तर दिया ।

यह जवाब सुनकर पिशाच डर गया और बोला, "ओह, तो तुम्हीं सिंहकेतु हो! तुम तो इतने ख़तरनाक हो कि पिशाचों को भी नोच कर खा जाओ ! बड़े सुख की बात है कि मैंने जल्दबाजी में आकर तुम्हारी कोई हानि नहीं की। यदि मुझसे तुम्हारा नुक़सान हो जाता तो पिशाचों का मुख्य गण मुझे ज़रूर कठिन दंड देता। इसका कारण यह है कि तुम हमें नित्यप्रति आहार देनेवाले हमारे मित्र हो ।" यह कहकर पिशाच हवा में विलीन होगया ।

सिंहकेतु को इस बार और भी अधिक आश्चर्य हुआ । वह सोचता हुआ आगे बढ़ा ।

कुछ क़दम आगे बढ़ने पर सिंहकेतु को कानों के पर्दे फाड़ देनेवाली भीषण गर्जना सुनाई दी। वह चौंक पड़ा और उसने पीछे मुड़कर देखा पलक मारते ही पेड़ के पार्श्व में बैठे एक राक्षस ने अपना हाथ बढ़ाकर सिंहकेतु को अपनी मुट्ठी में कसकर पकड़ लिया ।

"अरे मानव, तुम बड़े समय पर आये। मुझे बड़ी भूख लगी थी।" यह कहकर वह सिंहकेतु को अपना ग्रास बनाना ही चाहता था कि उसने एक क्षण रुककर पूछा, "तुम्हारी वेश-भूषा तो बड़ी क़ीमती मालूम होती है । ज़रूर तुम कोई ख़ास आदमी हो। बताओ तो, तुम कौन हो ?"

"मैं रुद्रपुर का राजा सिंहकेतु हूँ ।" राजा ने उत्तर दिया।

यह जवाब सुनकर राक्षस दिल दहलानेवाली हँसी हँस पड़ा । फिर बोला, "तुम्हें मारने का

मतलब है कि आगे मुझे खुद भूख से तड़प कर मरना होगा । मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ कि चिरकाल तक जियो ।'' यह कहकर उसने सिंहकेतु को मुक्त कर दिया ।

राक्षस की बातों ने राजा को घनघोर विस्मय में डाल दिया । डाकू सरदार, पिशाच और राक्षस ने उसे मारा क्यों नहीं ? जीवित क्यों छोड़ दिया ? उनकी बातों का क्या अर्थ है ? यही सब सोचते हुए सिंहकेतु एक पेड़ के नीचे बैठ गया ।

उधर राजा के सैनिक राजा की खोज में सारा जंगल छान रहे थे । आख़िर वे राजा से आ मिले इसके बाद सब राजधानी के मार्ग पर बढ़ते हुए शाम तक रुद्रपुर आ पहुँचे ।

राजा सिंहकेतु ने नगर में प्रवेश करते ही मंत्री धर्मचरण को बुलवा लिया । राजा जंगल के अपने अनुभवों का रहस्य जानने के लिए अधीर था । उसने सारा वृत्तान्त सुनाकर पूछा, ''मंत्रिवर, डाकू सरदार, पिशाच और राक्षस— वे तीनों मुझे आसानी से मार सकते थे, पर उन्होंने मुझे जीवित छोड़ दिया । इतना ही नहीं डाकू सरदार ने मुझे अपने अनुचरों को दिखाकर कहा, 'यह हमारा ही आदमी है' ; पिशाच ने कहा कि मैं पिशाचों को आहार देता हूँ और राक्षस ने मुझे चिरंजीवी होने का आशीर्वाद दिया । इन सब बातों का अर्थ मेरी समझ में नहीं आ रहा है । क्या आप मुझे इनका अर्थ समझा सकते हैं ?''

धर्मचरण थोड़ी देर मौन रहा, फिर बोला, ''महाराज, क्षमा करें तो मैं इन सब बातों का अर्थ बता सकता हूँ । पर आप क्रुद्ध न हों और इन कथनों की सच्चाई को समझने का प्रयत्न करें ।''

सिंहकेतु ने मंत्री धर्मचरण की बात को तत्काल स्वीकार कर लिया . तब धर्मचरण ने समझाया, ''डाकू सरदार ने आपको अपना ही एक आदमी बताया । इसका अर्थ था कि जिस प्रकार डाकू लोग जंगल में से गुज़रनेवाले लोगों को लूटते हैं, वैसे ही आप राज्य की प्रजा को लूटते हैं । आपमें और उन लोगों में कोई अन्तर नहीं है, यही इस बात का मतलब था ।''

अब पिशाच के कथन को स्पष्ट करते हुए मंत्री धर्मचरण ने कहा, ''आप कर न देनेवाले और थोड़ा सा भी विरोध प्रकट करनेवाले लोगों को फाँसी देकर उन्हें शवों का रूप दे देते हैं ।

पिशाच उन शवों को खाकर जीते हैं। इसलिए आप उन्हें आहार देनेवाले हुए। इसके अलावा, आप अधिक ख़तरनाक इसलिए हैं क्योंकि वे तो मृत प्राणियों को खाते हैं, जबकि आप तो जिंदा लोगों को नोचकर खा जाते हैं।"

इसके बाद राक्षस के कथन को स्पष्ट करते हुए मंत्री धर्मचरण ने कहा, "महाराज, आपका शासन राक्षसों के शासन जैसा बना हुआ है, इसलिए लोग अपने नगर-ग्राम छोड़कर जंगलों में भागे जा रहे हैं। ये लोग आसानी से राक्षसों की पकड़ में आजाते हैं और उनका आहार बन जाते हैं। इसलिए उस राक्षस ने आपको न केवल जीवित छोड़ा, बल्कि चिरकाल तक जीवित रहने का आशीर्वाद भी दिया।"

मंत्री धर्मचरण की बातें राजा ने बड़ी सावधानी से सुनीं। इसके बाद उसने पूछा, "मंत्रिवर, इसका अभिप्राय यही है न कि मैं डाकू, पिशाच और राक्षस कोटि का मनुष्य हूँ और इन्हीं की तरह दुष्ट एवं अत्याचारी हूँ?"

धर्मचरण ने विनम्र स्वर में कहा, "महाराज, आपको इस विषय में स्वयं गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए। मैंने जो अर्थ समझा था वह आपके सामने निवेदन कर दिया। अगर आपको मेरे कथन में कोई अतिशयोक्ति लगती हो तो आप मुझे क्षमा करें!"

राजा सिंहकेतु ने अपने आसन से उतरकर मंत्री को प्रणाम किया और बोला, "मंत्रिवर, आप सचमुच धर्मचरण हैं। आपने मेरा ज्ञानोदय किया है। मैं वचन देता हूँ कि मैं आज से न्यायपूर्वक शासन करता हुआ जनता की सद्भावना प्राप्त करने का प्रयास करूँगा। मुझे इस योग्य बनने के लिए आप आशीर्वाद दीजिए!"

धर्मचरण ने राजा को आशीर्वाद देकर कहा, "महाराज, आपने आज अपने भीतर की दुष्ट शक्तियों पर विजय प्राप्त की है। मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ।"

इसके बाद राजा सिंहकेतु ने जनता के पूर्ण हित को ही अपना लक्ष्य बना लिया और जन-कल्याण के असंख्य कार्य किये। कुछ ही काल में प्रजा उसे पितृवत् पूजने लगी।

सृष्टि-भेद

सृष्टि के आरंभ में अरणि नाम के एक ऋषि विशेष प्रतिष्ठित हुए। एक बार अरणि मुनि के मन में यह विचार आया कि सृष्टि में इतने प्रकार के प्राणियों की क्या आवश्कता है? क्या केवल मानवों का होना पर्याप्त नहीं है?

अपनी इस धारणा को हृदय में रखकर अरणि मुनि ने ब्रह्मा को लक्ष्य कर तपस्या की और अन्य प्राणियों को मनुष्योंके रूप में परिवर्तित करने का वरदान प्राप्त किया। अरणि तपस्या पूरी होने के बाद जब लौट रहे थे तो उन्होंने रास्ते में देखा कि एक हिरणी भयभीत हो भागी जारही है और एक बाघ गरजता हुआ उसका पीछा कर रहा है। अरणि ने अपनी वर - सिध्दि के प्रभाव से तत्काल हिरणी को एक स्त्री के रूप में और बाघ को एक पुरुष के रूप में बदल दिया।

नारी को देखते ही पुरुष के मन में मोह उत्पन्न हुआ। उसने इसे प्रेम समझा और नारी को अपने प्रेम का वृत्तान्त सुनाया। पुरुष की प्रेम याचना से नारी बहुत प्रसन्न हुई और उसने उसका निवेदन स्वीकार कर लिया।

उन दोनों के बीच उत्पन्न अनुराग को देखकर अरणि मुनि बहुत प्रसन्न हुए और विवाह - स ंस्कार के द्वारा उन दोनों को पति - पत्नी बनाकर गृहस्थ जीवन जीने का आदेश दिया। नारी - पुरुष ने बन में एक घर बनाकर अपनी गृहस्थी आरंभ की।

पति जानवरों का शिकार करता और पत्नी से मांस खाने का अनुरोध करता। पत्नी को मांसाहार अत्यन्त घृणित लगता था, इसलिए वह कंद मूल फल खा लेती थी। पत्नी का मांसाहार सेवन न करना पति को अच्छा नहीं लगता था। और अपने पति का निर्दयतापूर्वक पशु - वध करना पत्नी को पसन्द नहीं था। अरणि मुनि ने इस दंपति के घर के समीप ही अपना आश्रम बना

२५ वर्ष पूर्व 'चन्दामामा' में प्रकाशित एक कहानी

लिया और इन दोनों की जीवन - पधृदति का अध्ययन करने लगे। धीरे-धीरे छोटी-छोटी बातों को लेकर पति - पत्नी के बीच वैमनस्य बढ़ने लगा। पत्नी के हाथों पाले गये उसके प्रिय हिरणों एवं पक्षियों को पति मारकर खा जाता। यह देख पत्नी अत्यन्त व्याकुल हो उठती। वह अपने पति से अनुरोध करती कि तुम भी मेरी तरह कन्द मूल-फल क्यों नहीं खा लेते ? पति उसे आदेश देता, "तुम आज से मेरी तरह मांसाहार किया करो !"

धीरे-धीरे वैमनस्य गहरा रंग पकड़ता गया। फिर भी उनकी गृहस्थी चलती रही। इस बीच उनके कई संतानें भी होगयीं।

कुछ दिन और बीते। अब आदमी अपनी पत्नी को पीटने लगा और उसे अनेक प्रकार से सताने लगा। एक बार वह अपनी पत्नी पर अत्यन्त क्रोधित हो उठा और उसे पशु की तरह मार डालने के लिए उसने अपने हाथ में धनुष - बाण उठाया। पत्नी भयभीत होकर भागने लगी। पति ने उसका पीछा किया। पत्नी अरणि मुनि के आश्रम में जाकर छिप गयी। उसके पीछे पति भी वहाँ पहुँचा।

अरणि ने उसे शांत करके समझाया, "तुम दोनों एक - दूसरे से इतना अधिक द्वेष रखकर अपनी गृहस्थी कैसे चला सकते हो ? इसलिए अलग होकर दो अलग दिशाओं में चले जाओ !" यह कहकर अरणि ने उन दोनों को दो नवल पत्ते देकर कहा, "इन पत्तों को लेकर तुम दोनों पूरब और पश्चिम इन दो भिन्न दिशाओं में जाओ ! जब इन पत्तों का रस सूख जायेगा, तब तुम दोनों को इस जीवन से मुक्ति मिल जायेगी।

अरणि मुनि का आदेश मानकर वे उन पत्तों को लेकर विपरीत दिशाओं में चले गये। उन पत्तों के सूखते ही पुरुष बाघ के रूप में बदल गया और नारी हिरणी के रूप में परिवर्तित होगयी।

पर उन दोनों की संतान में माता - पिता से मिले बाघ और हिरण के गुण सदा के लिए रह गये।

अरणि मुनि ने समझ लिया कि सृष्टि में भेद आवश्यक है। उन्होंने सबको मानव बनाने की अपनी वरसिधि्द का परित्याग कर दिया।

बुरा-भला
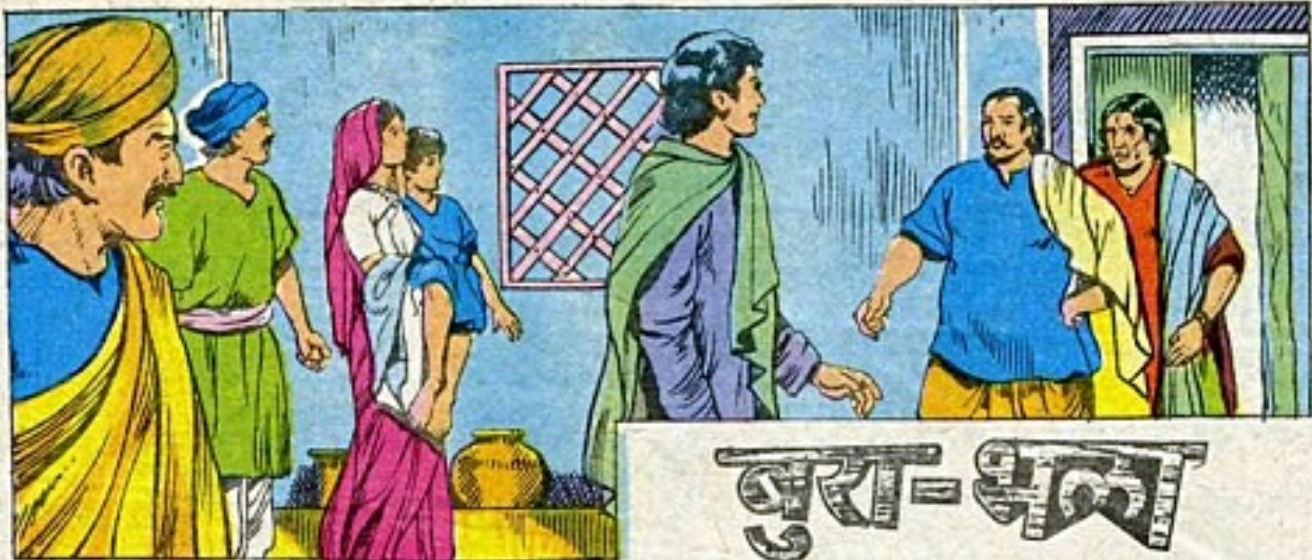
बुजुर्गों की अनुमति प्राप्त करने के लिए दो ग्रामवासी वहाँ से चले गये । इधर राजदीप नाम के इस सुन्दर युवा परदेशी ने बालक के तलुओं और हथेलियों का खूब मर्दन किया । इसके बाद उसने बालक की छाती को धीरे - धीरे सहलाया । कुछ ही क्षणों में बालक ने आँखें खोल दीं और धीरे से कराह उठा ।

इसके बाद राजदीप उठकर घर के पिछवाड़े की तरफ गया । उसने वहाँ से कुछ पत्तियां तोड़ीं और फिर बोला, ''ये पत्तियां प्राय: हर घर के पिछवाड़े में होती हैं । इनकी मदद से कई रोगों को दूर किया जा सकता है ।'' यह कहकर उसने उन पत्तियों को हथेलियों के बीच मसला और उनका रस निचोड़कर उसकी चार - पाँच बूँदें बालक के मुँह में डाल दीं ।

दूसरे ही क्षण बालक उठ बैठा और अपने माता - पिता की ओर देखकर मंद - मंद मुस्कराने लगा । बालक की माँ की खुशी का ठिकाना न रहा । वह राजदीप को प्रणाम करके बोली, ''तुम मनुष्य नहीं, देवता हो ! हम जिस बालक को मृत समझ बैठे थे, उसे तुमने जिला दिया !''

इस बीच गाँव के दोनों मुखिये वहाँ आगये और सारा समाचार जानकर भौंचक्के रह गये । फिर उन्होंने वस्तुस्थिति को समझ कर आचरण करने का निश्चय किया ।

छोटे मुखिया ने राजदीप की ओर कठोर दृष्टि डालकर कहा, ''हमारी दवाओंसे जो बालक नहीं बचा, अगर वह तुम्हारी दवा से बच गया है तो निश्चय ही तुम वैद्य नहीं, बल्कि मांत्रिक हो ! तुम जादू - टोना करते हो । बोलो, तुम हमारे गाँव में क्यों आये हो ?''

राजदीप ने शांत स्वर में उत्तर दिया,

"महाशय, मैं कोई तांत्रिक - मांत्रिक नहीं हूँ। हिमालय के एक महान तपस्वी के यहाँ मैं पलकर बड़ा हुआ हूँ। उन्हीं से मैंने अनेक प्रकार की विद्याएँ सीखी हैं। उन्होंने मुझे सब सिखाने के बाद यह आदेश दिया कि मैं परोपकार बुध्दि से जनता-जनार्दन की सेवा करूँ। इसी भावना से मैं देशाटन कर रहा हूँ। आज जब आपके गाँव में आया तो अज्ञानवश एक बालक को मृत्यु के मुख में जाते देख मैं सहन नहीं कर सका। मैंने यथाशक्ति इस बालक की चिकित्सा कर इसे बचा लिया है।" राजदीप चुप होगया।

"तुमने हमारी अनुमति के बिना ही इस बालक की चिकित्सा की है। इससे अवश्य ही हमारे गाँव का अमंगल होगा। इस अमंगल से मुक्ति पाने का एक ही उपाय है कि इस बालक के माता-पिता तुम्हें कोड़े लगायें। क्या तुम यह कष्ट सहन करने के लिए तैयार हो?" गाँव के बड़े मुखिया ने पूछा।

"अगर इससे आपके गाँव का अमंगल दूर हो सकता है तो उस अनर्थ को दूर करने के लिए मैं कोड़े की मार खाने के लिए तैयार हूँ।" राजदीप ने उत्तर दिया।

इसके बाद मुखियों के आदेश से बालक के माता-पिता ने राजदीप के दस-दस कोड़े लगाये। राजदीप की पीठ छिल गयी और घावों से खून बहने लगा।

"अब हमारे गाँव का अनिष्ट दूर होगया है। युवक, तुम इसी समय हमारे गाँव को छोड़कर

चले जाओ!" गाँव के दोनों मुखियों ने परदेशी राजदीप से कहा।

राजदीप ने कहा, "महाशयो, आपने अभी मेरे द्वारा हुए अनिष्ट को दूर करने का उपाय बता दिया है। अब आगे मैं यदि किसी की सहायता करूँगा तो उसके हाथ से बीस कोड़े खा लिया करूँगा। इससे आपके गाँव का कोई अनिष्ट न होगा। मुझे कुछ दिनों के लिए इसी गाँव में रहने दीजिए!"

राजदीप का उत्तर सुनकर मुखियों को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने उससे कहा, "तुम तो बड़े मूर्ख मालूम होते हो जो मार खाकर भी इस गाँव में रहना चाहते हो!"

"महाशय, मेरे इस आग्रह का एक कारण है। समस्त पुराण और शास्त्र बताते हैं कि अपकार करनेवाले के साथ भी उपकार करना चाहिए। पर

गाँव को छोड़कर चले जाओ, बस यही हमारी आज्ञा है ।"

राजदीप ने हठपूर्वक कहा, "मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा !"

"नहींजाओगे तो तुमको हम जबर्दस्ती यहाँसे भेज सकते हैं, जानते हो ?" दोनों मुखियोंने कठोर स्वर में कहा ।

राजदीप मंदहास करके बोला, "अगर मैं अपनी इच्छा से जाऊँ तो बात अलग है, लेकिन आप जबर्दस्ती मुझे यहाँ से नहीं भेज सकते। एक बात ध्यान रखना ! अगर कोई मुझे मारता है तो वह मार उसी को पड़ती है। जो मुझे धक्का देता है, वह खुद गिर जाता है। मुझ पर जो विष का प्रयोग करता है, वह स्वयं विष का शिकार होजाता है ।"

इस गाँव में ऐसे मूर्ख बसे हैं जो उपकार करनेवाले को भी कोड़े मारने की सज़ा सुनाते हैं। ऐसी हालत में इन अज्ञानी लोगों की मदद करना मैं अपना फर्ज़ समझता हूँ। इस गाँव में थोड़े दिन और रुके रहने का कारण इनके प्रति मेरी सहानुभूति है ।" राजदीप ने उत्तर दिया ।

दोनों मुखियों की समझ में न आया कि इस परदेशी युवक को क्या उत्तर दें ! उन्होंने कभी सोचा भी नहीं था कि मानव समाज में इस युवक जैसे मनुष्य भी हो सकते हैं !

पर उनका मन संशय और पाप से भरा हुआ था। इस युवक के कारण उन्हें अपना अधिकार ख़तरे में पड़ता नज़र आया। उन्होंने उसे निकाल देना ही उचित समझा। वे बोले, "तुम तुरन्त इस

राजदीप की बातें सुनकर मुखियों का क्रोध उबल पड़ा। उन्होंने वहाँ खड़े दो युवकों को आदेश दिया, "देखते क्या हो ? यह कोई मांत्रिक मालूम होता है। इसे पकड़कर अभी गाँव के बाहर कर दो !"

उसी क्षण दो युवक आगे बढ़े। पर तभी एक विचित्र घटना हुई। वे दोनों युवक इस तरह गाँव के बाहर जा गिरे, मानो किसी ने उन्हें खींचकर बाहर कर दिया हो ।

इस घटना को देख दोनों मुखिये दंग रह गये। पहले उन्होंने इस परदेशी युवक को एक कुशल वैद्य मात्र समझा था। पर इस घटना ने उनके दिल में यह डर पैदा कर दिया कि अवश्य ही यह कोई

मांत्रिक भी है। वे तरह-तरह की कपटपूर्ण बातों से गाँववालों को धोखा दे सकते थे, लेकिन वे मंत्र-तंत्र नहीं जानते थे।

बड़ा मुखिया राजदीप से बोला, "युवक, अब तो पक्का होगया कि तुम सचमुच मांत्रिक हो। इस गाँव में तुम हमें बदनाम करने आये हो। सच है न ?"

"मैं मांत्रिक नहीं हूँ। लोगों का उपकार करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। यहाँ मैं आप लोगों को बदनाम करने के लिए नहीं, आप लोगों की सेवा करने आया हूँ। मैं जानता हूँ कि आपकी सेवा के बिना लोगों की मदद नहीं कर सकता।" राजदीप ने विनीत स्वर में कहा।

राजदीप के मुख से अपनी सेवा की बात सुनकर मुखिये बहुत संतुष्ट हुए। इस बात के बाद उन्होंने उसे शतनंदन गाँव में रहने की अनुमति दे दी।

इसके बाद छोटे मुखिया ने राजदीप को चेतावनी देते हुए कहा, "हमारी एक शर्त है। यदि तुमने हमारी अनुमति के बिना किसी की मदद की, तो हम तुम्हें गाँव से निकाल देंगे। यह बात अच्छी तरह से याद रखना।"

"दूसरों की मदद करने के मामलों में मैं किसी की अनुमति की प्रतीक्षा नहीं करूँगा। यदि मुझसे किसी की हानि करने को कहा जायेगा तो मैं इस देश के राजा की भी परवाह नहीं करूँगा और न ऐसी कोई बात मानूँगा। इसके अलावा मुझे आपकी इच्छानुसार चलने में कोई एतराज़ नहीं है।" राजदीप ने पूर्ण निर्भय होकर कहा।

काफ़ी देर हो चुकी थी। दोनों मुखियों ने

अनिच्छापूर्वक अपना सिर हिलाया और वहा से चले गये। उन दोनों के घर पास - पास थे और दोनों के घरों के बीच चौपाल थी। गाँव के लोग उसी चौपाल में मुखियों से सलाह-मशविरा किया करते थे।

मुखियों के घरों के सामने एक बड़ा टीला भी था। उन्होंने उस पर एक छोटी-सी झोंपड़ी बनवा दी और राजदीप को उसमें रहने की आज्ञा दी। राजदीप उस झोंपड़ी में रहने लगा।

मुखियों को यह परदेशी युवक विचित्र आदमी लगता था। मंत्र-तंत्र जानते हुए भी वह किसी पर उनका प्रयोग नहीं करता था। वह हमेशा हँस मुख रहता था। कभी किसी ने उसे नाराज़ होते नहीं देखा था।

राजदीप नियमित रूप से गाँव में जाता और सबके दुख की पूछताछ करता। वह गाँव वालों की मुसीबत या कष्ट का उपाय बताकर उन्हें सुखी करता और स्वयं मुखियों द्वारा निर्धारित बीस कोड़ों की मार खलेता। वह चुपचाप इस मार की पीड़ा को सहन करता।

कुछ दिन इसी प्रकार बीत गये। इस बीच ग्रामवासियों के हृदय में राजदीप के लिए बड़ा प्रेम और आदर होगया। उन्हें उसे कोड़े की मार लगाने का मुखियों का मसला बड़ा क्रूर और अन्यायपूर्ण लगा। कुछ लोगों ने मुखियों के पास आकर निवेदन किया, "अपने मददगार पर कोड़े की मार लगाने से हमें बहुत दुख होता है। यह रिवाज़ बन्द कर देना उत्तम होगा।"

गाँववालों की बात सुनकर बड़ा मुखिया जल-भुन गया। वह कठोर होकर बोला, "इसका मतलब है कि तुम लोग मुझे उपदेश देने आये हो! यह युवक बहुत बड़ा मांत्रिक है। तुम लोग जो कोड़े उसे लगाते हो, वे उस पर नहीं लगते उसे हम गाँव से नहीं भगा पाये, इसीलिए हम चुपचाप सब सहन कर रहे हैं। वह अपने किसी स्वार्थ के लिए यहाँ आया हुआ है। मांत्रिकों से सहायता लेना अनिष्टकारक है, इसीलिए हमने कोड़ा की व्यवस्था की है। तुम लोग चाहो तो उसे एक बार कोड़ों की मार मत लगाओ! फिर तुम्हें पता लगेगा कि क्या होता है! (क्रमशः)
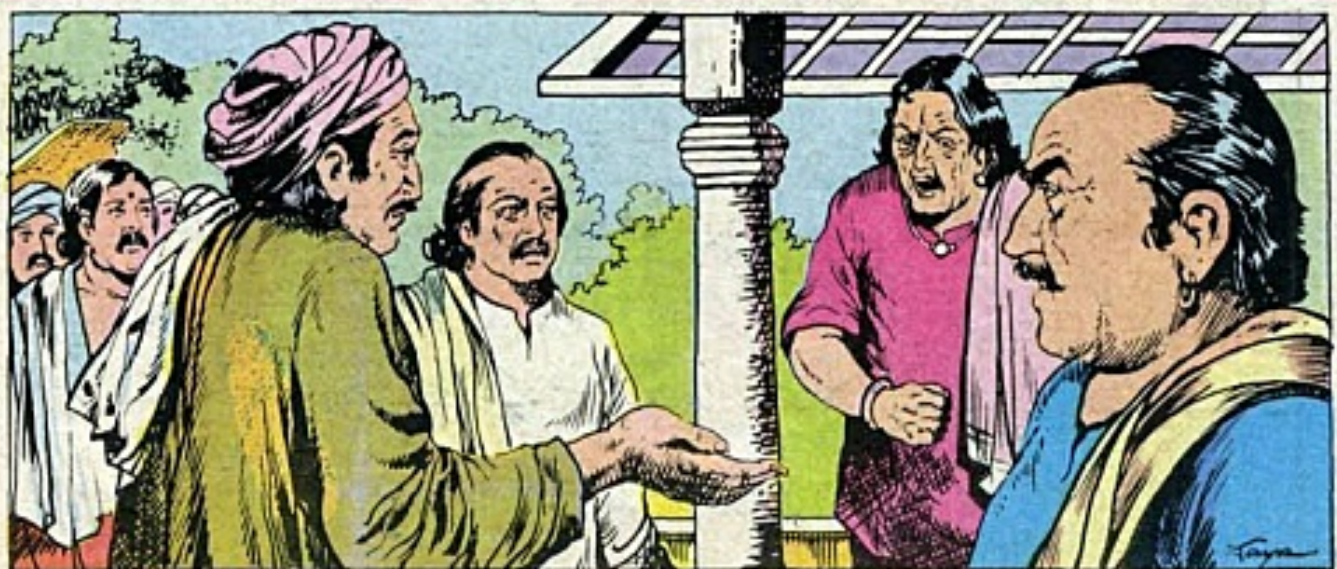
वानर और वानर मा-नव

वानरों के पूंछ होती है, लेकिन वानर मानव (एप्स) के पूंछ नहीं होती। इनके बीच एक ख़ास अन्तर यह भी है कि वानर मानवों के हाथ पैरों से अधिक लंबे होते हैं। ये वानरों से अधिक समझदार भी होते हैं।

टौकान पक्षी की नाक देखने में भारी प्रतीत होती है, पर वास्तव में ऐसी बात नहीं है। यह पतले धागों जैसे पदार्थ से बुनी हुई-सी होती है और ऊपर मज़बूत हड्डी से ढंकी होती है। यह ऊपर से जितनी भारी मालूम होती है, उतनी है नहीं, बल्कि बहुत हलकी होती है।
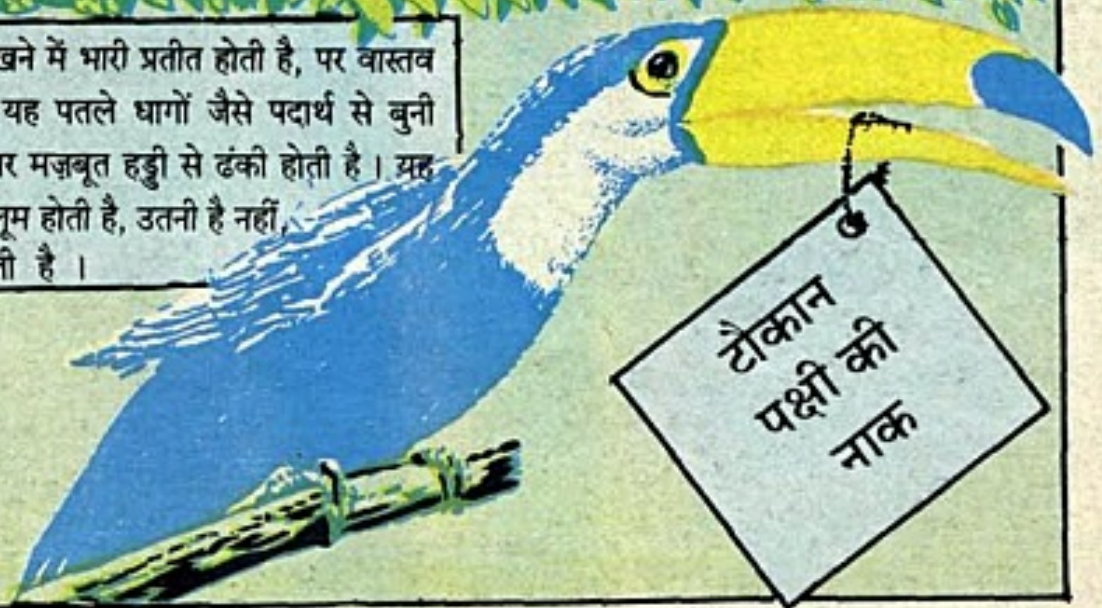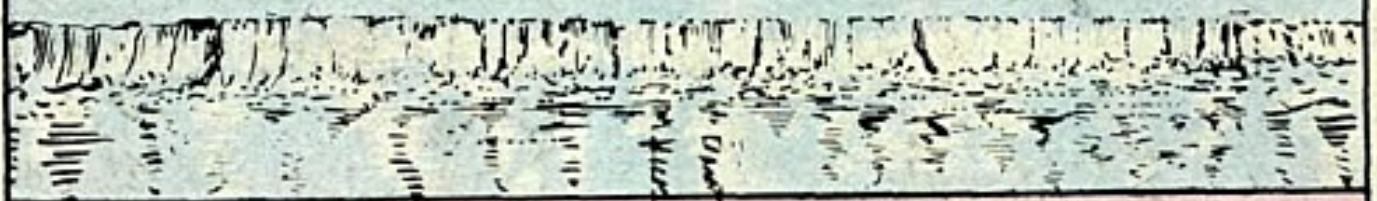
टौकान पक्षी की नाक

Sandak

Sandak

EVEN THRICE A YEAR. WITH LOVE

WE WANT SANDAK

SANDAK everytime

Mothers love Sandak, because Sandak is made from pure Chemilon*. Safe, affordable, versatile, durable Chemilon. And because children love Sandak, too!

* Registered Trademark

Sandak

For all times

ACIL/Bata—S/3—87

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जुलाई १९८७ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

V. Rajamani

B. C. Ravichandar

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ मई १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: **चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६**

मार्च के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो: एक दो तीन चार!

द्वितीय फोटो: जूडो को है तैयार!!

प्रेषक: अमृत सिंह, ३/१३९, श्याम नगर, अलीगढ-२०२००१

चन्दामामा

भारत में वार्षिक चन्दा: रु. ३०-००

चन्दा भेजने का पता:

डॉल्टन एजेन्सीस, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

अन्य देशों के चन्दे सम्बन्धी विवरण के लिए निम्न पते पर लिखिये:

चन्दामामा पब्लिकेशन्स, चन्दामामा बिल्डिंग्स, वडपलनी, मद्रास-६०० ०२६

Printed by B.V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., 188 N.S.K. Salai, Madras 600 026 (India) and Published by B. VISHWANATHA REDDI on behalf of CHANDAMAMA PUBLICATIONS, Chandamama Buildings, Vadapalani, Madras 600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.
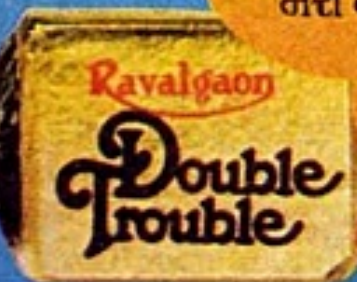
चॉको-क्रीम
मेरा नाम!
Ravalgaon
Double Trouble
"उधर भालू, इधर शेर
टॉफियां खाने
में मत कर देर!!"
Ravalgaon
Double Trouble
कॉफी-क्रीम
मेरा नाम!
Ravalgaon
Double Trouble
Toffees
डबल मुसीबत में डबल मज़ा!!

No 'flip and discard' magazine

"An issue of The Heritage is generally read more than once by its readers... usually, read in depth. Over 90% of Heritage readers preserve their copy..."

It's an unusual magazine. It has a vision for today and tomorrow.

It features ancient cities and contemporary fiction, culture and scientific developments, instead of filmstar interviews and political gossip. And it has found a growing readership, an IMRB survey reveals. Professionals, executives and their families are reading The Heritage in depth – 40% from cover to cover, 42% more than half the magazine.

More than 80% of The Heritage readers are reading an issue more than once.

And over 90% are slowly building their own Heritage collection.

Isn't it time you discovered why?

CMR-2155
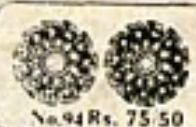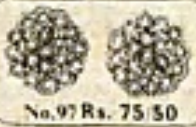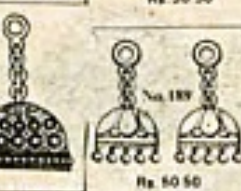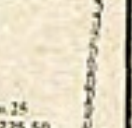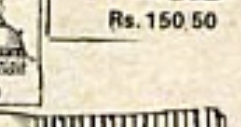
So much in store, month after month.

ज़िंदगी में मौजमस्ती की उमंग अभी शुरू ही हुई थी कि मुँहासे निकले और सारा मज़ा किरकिरा कर गए

साल में एक दिन तो ऐसा आता है जब हमें भी अपनी कलाकारी दिखाने का अवसर मिलता है. वह दिन आ गया था, मेरे स्कूल के सालाना जलसे का दिन. इसमें टैलेन्ट कान्टेस्ट के लिए मैं अपने गाने की खूब रिहर्सल कर रही थी. सब कुछ ठीकठाक चल रहा था कि तभी अचानक मैंने देखा, मेरे चेहरे पर मुंहासे निकल रहे हैं. ये क्या? मुंहासे और इस वक्त? नहीं, नहीं. ज़िंदगी में मौजमस्ती की उंमग अभी शुरू होने को है और ... चेहरे पर मुंहासे लिए मैं स्टेज पर तो कभी नहीं जा सकती.

तभी मेरी सहेली आ पहुंची. उसने मुझे बताया, "फ़िकर करने की कोई बात नहीं. बस क्लिअरेसिल लगाओ. मैंने भी इसे इस्तेमाल किया है. तुम्हें मालूम है क्लिअरेसिल कील-मुंहासे साफ़ करती है और उन्हें फैलने से भी रोकती है." मैंने क्लिअरेसिल लगाई और यक़ीन मानिए, इसने अपना असर दिखाया. मेरे इनाम लेते वक्त तो तालियों की गड़गड़ाहट से हाल गूंज उठा और मैंने मन ही मन क्लिअरेसिल को धन्यवाद दिया, जिसकी मेहरबानी से ज़िंदगी का ये खूबसूरत अवसर मेरे हाथ लगा.

क्लिअरेसिल ३ तरफ़ा असर दिखाती है :

१. कील-मुंहासों को खोलती है
इसकी विशेष औषधि प्रभावित कील-मुंहासों का मुंह खोलने में मदद करती है.

२. बैक्टीरिया से मुकाबला करती है
इसकी बैक्टीरिया-विरोधी क्रिया बैक्टीरिया से मुकाबला करती है, जिनसे मुंहासे निकल और फैल सकते हैं.

३. कील-मुंहासे सुखा देती है
अधिक तेल सोखकर कील-मुंहासे सुखा देने में मदद करती है.

OBM/7991 HN

क्लिअरेसिल कील-मुंहासों का स्पेशलिस्ट, जो सचमुच असरदार है.

CHANDAMAMA (Hindi) MAY 1987 Regd. No. M. 5452